Study Learning Material (SLM)

of

Bachelor of Art Hons (Hindi)

Centre for Distance and Online Education

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY

N.H.-9, Delhi Road, Moradabad, Uttar

Pradesh244001

Website: www.tmu.ac.in

Semester-1

Bachelor of Art Hons (Hindi)

DBAH105-**भक्तिकाल**

EXPERT COMMITTEE

Dr.Omprakash Singh,
Assistant Professor
VARDHMAN COLLEGE BIJNOR, U.P.

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
S.B.D. GIRLS DEGREE COLLEGE DHAMPUR, U.P.

COURSE COORDINATOR

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
Faculty of Education, Teerthanker Mahaveer University. (TMU)

BLOCK PREPARATION

Unit Writers	Assisting & Proof Reading	
Dr. Poonam Chauhan,	**Dr. M. P. Singh**	**Dr. Vinod Kumar Jain**
Assistant Professor	**Professor**	**Associate Professor**
TMU	**TMU**	**TMU**

Secretarial Assistance and Composed By :

Mr. Deepak Malik
Assistant Registrar,
Faculty of Education, TMU.

COURSE INTRODUCTION

The Constitutional Development in India course, worth four credits and comprising five blocks, aims to enhance your understanding of political concepts and provide knowledge about various states.

This course adopts a cross-curricular approach to boost both your political and academic knowledge, making it easier and more efficient for you to comprehend study materials in other subjects.

The course is divided into five blocks of different units. The Block titles are as follows:

Block 1 - **भक्तिकाल की पृष्ठभूमि**

Block 2 - **भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ**

Block 3 - **निर्गुण काव्यधारा (ज्ञान मार्ग और प्रेम मार्ग)**

Block 4 - **निर्गुण कवि और उनकी रचनाएँ**

Block 5 - **निर्गुण काव्य की आवश्यकताएँ**

Each Unit is divided into sections and sub-sections. We begin each Unit with a statement of objectives to indicate what we expect you to achieve through the Unit. There are several activities in each section of the Unit which you must attempt. You should then check your answers with those given by us at the end of the Unit.

There are assignments based on this course. After completing the assignments, submitted to the CDOE, TMU. The assignment is evaluated and returned to you with comments which will help you to improve your proficiency in political Science.

We hope you enjoy the Course. Please attempt all the activities and exercises given in the Units.

Acknowledgements:

The material (pictures and passages) we have used is purely for educational purposes.

Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this

book. Should any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future editions of this book.

BLOCK INTRODUCTION

Block 1 (भक्तिकाल की पृष्ठभूमि) has two Units. Under this theme we have covered the following topics:

Unit 1 : **प्रस्तावनाः भक्तिकाल का आविर्भाव**

Unit 2 : **भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि**

भक्तिकाल का आविर्भाव भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने आध्यात्मिक जागरूकता और सामाजिक सुधारों को बढ़ावा दिया। भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में समाज में व्याप्त जातिवाद और धार्मिक असमानताओं के खिलाफ एक सशक्त प्रतिक्रिया शामिल थी। यह आंदोलन विविध भक्तों के माध्यम से एकता और समर्पण का संदेश फैलाता है, जो धार्मिक भिन्नताओं को पार कर सामाजिक और आध्यात्मिक परिवर्तन को प्रेरित करता है।

We suggest you do all the activities in the Units, even those which you find relatively easy. This will reinforce your earlier learning.

BLOCK 1

भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

UNIT- I

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य- इस इकाई के अन्तर्गत भक्तिकाल के उदय के कारणों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भक्तिकाल को ठीक-ठीक समझ पाएँगे।
- भक्तिकाल के उदय के कारणों को समझा पाएँगे।
- भक्तिकाल के विभिन्न प्रवृतियों से रू-ब-रू होंगे।

1.1 प्रस्तावनाः भक्तिकाल का आविर्भाव

1.2 भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि

- ग्रियर्सन के अनुसार
- इस्लाम की भूमिका
- आलवारों का योगदान
- प्रमुख दार्शनिकों की भूमिका
- सिद्धों-नाथों की भूमिका

1.3.सारांश

1.4 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)-

1.5 अभ्यास-प्रश्न लघुउत्तरीय प्रश्न

1.6 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रस्तावना- अगर हम भक्ति आंदोलन की साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार करें, तो भक्ति आंदोलन के दौरान आदिकालीन साहित्य की आध्यात्मिकता के विकास और विस्तार को लक्षित किया जा सकता है। आध्यात्मिकता की ओर रूझान रखने वाले रचनाकारों ने न केवल भक्ति आंदोलन के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण किया, वरन् भक्ति आंदोलन के विभिन्न काव्यधाराओं के स्वरूप के निर्धारण में भी अहम् भूमिका निभाई। भक्ति आंदोलन की शुरूआत हिन्दी साहित्य के धरातल पर कबीर से मानी जाती है। आदिकालीन सिद्धों और नाथों ने न केवल कबीर और कबीर प्रवर्तित संत-मत के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि निर्मित करने का काम किया, वरन् संवेदना के साथ-साथ शिल्प के धरातल पर भी संत-साहित्य के स्वरूप निर्धारण में अहम् भूमिका निभाई।आदिकाल के ही दौरान विद्यापति अपनी पदावली में जयदेव के गीत-गोविंद की माधर्योपासना की परंपरा को विस्तार प्रदान करते हैं। इस क्रम में भक्ति और शृंगार के बीच ऐसा संतुलन साधते हैं कि उन्हें भक्त कवि मानने वाले आलोचक भी पदावली में मौजूद लौकिक शृंगार की अनदेखी नहीं कर पाते और उन्हें शृंगारिक कवि मानने वाले आलोचक भी पदावली में मौजूद अलौकिकता की अनदेखी नहीं कर पाते। आगे चलकर सूर के नेतृत्व में उपासना की इसी परंपरा का विकास होता है। विद्यापति में मौजूद भक्ति-भावना को उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय सूर को ही जाता है। इसी प्रकार जायसी के नेतृत्व में जिस प्रेमाख्यानक काव्यधारा का विकास होता है, प्रत्यक्षतः न सही, तो परोक्षतः ही सही उसकी पृष्ठभूमि को भी तैयार होते हुए आदिकाल में देखा जा सकता है। अमीर खुसरों की रचनाओं में मनोरंजन की प्रवृत्ति की प्रधानता है, लेकिन उनका संबंध सूफीमत में भी माना जाता है। मध्यकाल में जो समन्वित संस्कृति आकार ग्रहण करती है और जिसके स्वरूप निर्धारण में प्रेमाख्यानक कवि जायसी का अहम् योगदान है, उस समन्वित संस्कृति की पृष्ठभूमि को संवेदना और भाषा दोनों के ही धरातल पर आकार ग्रहण करते हुए अमीर खुसरो के यहाँ देखा जा सकता है। इन्होंने एक ओर कौव्वालियों के जरिये इस्लाम के मानवतावादी संदेश हिन्दुओं तक पहुँचाने का काम किया जो दूसरी ओर ब्रजभाषा में लिखे गीतों के जरिये हिन्दु घरों में स्त्रियों की त्रासदी से मुसलमानों को परिचित करवाना चाहा। साथ ही, अपनी रचना के जरिये इन्होंने हिन्दी-अरबी को भी एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया। अब प्रश्न उठता है कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिन्होंने आदिकालीन साहित्य की वीरगाथात्मकता और शृंगारिकता को पीछे छोड़ते हुए आध्यात्किता को हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा में स्थापित किया? इसे तद्युगीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक के साथ-साथ धार्मिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में समझा जा सकता है। इस युग में इस्लाम का आगमन महज एक सामान्य घटना नहीं है। इस्लाम न केवल एक संगठित मजहब था। इसने लोक और शास्त्र के उस द्वंद्व को उभारने में अहम् भूमिका निभाई, जो भारतीय समाज में पहले से मौजूद था। इसी व्यापक पृष्ठभूमि में सांस्कतिक अस्मिता का प्रश्न उठ खड़ा होता है और इसी के प्रत्युत्तर में सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश के रूप में भक्ति आंदोलन का आविर्भाव होता है।

2 भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमिः

भक्ति आंदोलन वर्तमान के सापेक्ष अतीत का पुनर्मूल्यांकन है। यह महज धार्मिक आन्दोलन नहीं है, वरन् यह उस सांस्कृतिक जागरण की सशक्त अभिव्यक्ति है जो गहरे मानवीय सरोकारों से उपजी है। इन्हीं मानवीय सरोकारों के कारण इसमें एक ओर सामंतवाद विरोधी चेतना मौजूद है, तो दूसरी ओर ब्राह्मणवादी पुरोहितवादी वर्चस्व वाली व्यवस्था के विरूद्ध उग्र विद्रोही स्वर। जाति, संप्रदाय और क्षेत्र विशेष की सीमाओं को अतिक्रमित करता हुआ भक्ति आंदोलन भारत की करोड़ो-करोड़ जनता के बीच अपनी पहचान बनाता है। सच तो यह है कि यह एक लंबे सामाजिक-सांस्कृतिक संवाद का प्रतिफल है। यह संवाद उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच चल रहा था, लोक और शास्त्र के बीच चल रहा था, हिन्दू और इस्लाम के बीच चल रहा था और अतीत एवं वर्तमान के बीच चल रहा था। पूरा-का-पूरा संवाद ज्ञान के आलोक में अज्ञान के अंधकार के विरूद्ध था। इसलिए तो जागरण का सातत्य भक्तिकाव्य का मूलस्तर है। इसी का आह्वान करते हुए तुलसी को 'विनय पत्रिका' में लिखना पड़ाः

'अब लौं नसानी, अब लौं नसैहों

रामकृपा भव निसा-सिरानी, जागे फिरि न डसैहों"।

भक्ति काल में जागरण अज्ञान से मुक्ति का जागरण है, तभी तो कबीर कहते हैं-

संतो आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ा ली, माया रही न बाँधी रे।

- **ग्रियर्सन के अनुसार**

भक्ति आन्दोलन के प्रेरणास्रोत की व्याख्या करते हुए ग्रियर्सन सबसे पहले भक्ति आंदोलन के कारण का संकेत देते हैं और इसे बौद्ध आंदोलन से भी विशाल बतलाते हैं। फिर वे इसके आकस्मिक प्रादुर्भाव का संकेत देते हैं और अनुमान के आधार पर भक्ति आंदोलन को ईसाइयत की देन बतलाते हैं। वे इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि दूसरी-तीसरी सदी में कुछ ईसाई मद्रास-तट पर आकर बसे थे। इन्हीं के वंशजों के प्रभाव से दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ और वहाँ से इसका समस्त देश में प्रचार हुआ। उनके अनुमान का दूसरा आधार कृष्णभक्ति काव्य में मौजूद प्रेम और करूणा का स्वर है। उन्होंने भक्ति आंदोलन में मौजूद प्रपत्तिवाद (अर्थ-अनन्य भक्ति, आत्मसमर्पण) को ईसाई मत से जोड़कर देखा। लेकिन, उनके इस मत से सहमत नहं हुआ जा सकता क्योंकि भक्ति आंदोलन का प्रपत्तिवाद आलवारों के प्रपत्तिवाद से मेल खाता है। यहाँ पर अनन्य प्रेम और आत्मसमर्पण है। यहाँ पर आत्मदैन्य और आत्म निवेदन है, यह पापबोध नहीं जो हमें ईसाई मत में देखने को मिलता है।

- <u>इस्लाम की भूमिका</u>

भक्ति आंदोलन के उद्भव की व्याख्या इस्लाम के परिप्रेक्ष्य में भी की गई है। तारानचन्द ने इसे इस्लाम की देन माना है। इनका मानना है कि भक्ति आंदोलन इसलाम के प्रारंभिक काल में ही पश्चिमी समद्र तट पर आ बसे अरबों की देन है। ताराचन्द्र का यह मत ग्रियर्सन के मत पर ही आधारित प्रतीत होता है। इतिहासकार है भक्ति आन्दोलन के उद्धव को मुस्लिम सत्ता की स्थापना और इसके फलस्वरूप हिन्दुओं के राजकाज से अलग होने केसंदर्भ में देखा है। आगे चलकर आचार्य शुक्ल के यहाँ इसी का विस्तार मिलता है। आचार्य शुक्ल ने आदिकालीन ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में भक्ति कावय के उद्भव की परिस्थितियों को देखने का प्रयास किया। उन्होंने इसेदेश में मुस्लिम शासन की स्थापना हिन्दुओं के मंदिर में विध्वंस, देवमूर्तियों को तोड़े जाने, पूज्य पुरूषों के अपमान और इन परिस्थितियों में कुछ न पाने की विवशता से जोड़कर देखने की कोशिश की। शुकल जी ने वीरगाथाकाल के अंत और भक्ति के उदय को हिन्दुओं के पराभव से जोड़कर देखने का प्रयास किया। उनकी दृष्टि में भक्ति आन्दोलन बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों में अपनी अस्मिता को बचाने की कोशिश का प्रतिफल है। प्रकारान्तर में उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि भक्ति कावय अपनी 'पौरूष से हताश जाति' की रचना है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि शुक्ल जी भक्ति आन्दोलन के उद्धव की संश्लिष्ट-प्रक्रिया को नहीं समझते थे। उन्होंने लिखा है- भक्ति का जो सोता दक्षिणय की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था, वह राजनीतिक कारणों से जनता के शून्य पड़ते हृदय में स्थान पाकर फैल गया। स्पष्ट है कि शुक्ल जी भक्ति की दीर्घकालिक पम्परा से परिचित थे और उन्होंने परिर्विर्तत राजनीति दशा को महज तीव्रता प्रदान करने वाला कारक माना. लेकिन, आचार्य द्विवेदी न तो ग्रियर्सन की व्याख्या से सहमत हैं और न ही आचार्य शुक्ल की व्याख्या से। वे ग्रियर्सन के मत का खंडन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि भक्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पहले से ही निर्मित हो रही थी। भक्ति अचानक नहीं उमड़ी। वे यह जानने से भी इंकार करते हैं कि भक्ति आंदोलन इस्लाम की प्रतिक्रिया है। वे भक्ति आंदोलन को भारतीय चिंताधारा के स्वाभाविक विकास के रूप में देखते हैं। एक ओर लोक और शास्त्र का द्वंद्व, दूसरी ओर अलवारों की भक्ति परंपरा-भक्ति आंदोलन इसी की स्वाभाविक परिणति है। अब अगर आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की व्याख्या पर गंभीरता से विचार करें, तो हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों भक्ति की परंपरा और इस्लाम के प्रभाव की बात करते हैं, फर्क सिर्फ इतना है कि आचार्य शुक्ल ने इस्लाम की भूमिका को कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण माना है और आचार्य द्विवेदी ने लोक और शास्त्र के द्वंद्व को। स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल भक्ति आंदोलन को अलवारों की परंपरा से जोड़कर देखते हैं और इसे वैष्णव धर्म की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मानते हैं। उधर आचार्य द्विवेदी की नजर में भक्ति आंदोलन लोक धर्म की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें राम स्वरूप चतुर्वेदी भक्ति आंदोलन में एक ओर इस्लाम की भूमिका को स्वीकार करते हैं, तो दूसरी ओर इसे लोक और शास्त्र के द्वंद्व का परिणम भी मानते हैं। भले ही भक्ति आंदोलन के उद्भव में इस्लाम की भूमिका को लेकर विवाद हो, लेकिन आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी दोनों ही इस्लाम की भूमिका को स्वीकार करते हैं। इस्लाम ने एक ओर राजनीतिक सत्ता के धरातल पर हिन्दू शासकों को प्रतिस्थापित करने का काम किया, तो दूसरी ओर इक्ता व्यवस्था

की वैकल्पिक प्रणाली के जरिए विद्यमान सामंती व्यवस्था को भी कमजोर बनाने का काम किया। इस प्रकार सामंतों की राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक ताकत को भी सशक्त चुनौती दी। इसके अतिरिक्त एक संगठित मजहब के रूप में इस्लाम के आगमन में हिन्दू धर्म के साथ-साथ पुरोहितवाद के लिए भी चुनौती उपस्थित की। इस्लाम के सामाजिक समानता के आदर्श, सामूहिक उपासना पद्धति, सबों को मोक्ष प्राप्ति का अधिकार और इसकी मानवतावादी चेतना ने उन लोगों के समक्ष विकल्प प्रस्तुत करने का काम किया जिन्हें शाख व शास्त्र प्रतिपादित धर्म ने हिन्दू समाज के हाशिए पर पहुँचाते हुए 'न हिन्दु- न मुसलमान' वाली स्थिति में पहुँचा दिया। इस प्रकार इस्लाम ने उस सामंती पुराहितवादी गठबंधन के वर्चस्व के लिए चुनौती प्रस्तुत करने का काम किया और इस क्रम में उसे कमजोर बनाया जो आम जनता के शोषण और उत्पीड़न के लिए जिम्मेवार थे। इस्लाम द्वारा प्रस्तुत इसी चुनौती की पृष्ठभूमि में भारतीय समाज के एक हिस्से की सकारात्मक प्रतिक्रिया ने ही आत्मावलोकन की प्रक्रिया को जन्म दिया और इस आत्मावलोकन ने सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था को मानवीय रूप देने की कोशिश की। इसी आत्मावलोकन को भक्ति आंदोलन के रूप में अभिव्यक्ति मिली। कबीर से लेकर तुलसी तक तमाम संत भक्त कवि इस आत्मावलोकन को ही अभिव्यक्ति देते हुए तद्युगीन व्यवस्था की अमानवीयता पर प्रहार करते हैं और व्यवस्था को मानवीय रूप प्रदान करने की कोशिश करते हैं। इस्लाम ने न केवल सामंती-पुरोहितवादी गठबंधन के वर्चस्व को चुनौती देते हुए उसे कमजोर बनाने का प्रयास किया, वरन् इस्लाम के साथ आने वाले तकनकी परिवर्तनों ने सल्तनकालीन आर्थिक विकास को गति प्रदान करने का काम किया। विशेष रूप से कला और स्थापत्य के क्षेत्र में आनेवाली तेजी के साथ-साथ शहरी जीवन से जुड़ी गतिविधियों के विस्तार ने कामगार वर्ग की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने का काम किया और यह समूह तदनुरूप सामाजिक स्थिति में भी सुधार की आकांक्षाओं को पालने लगा शास्त्र के द्वंद्व को मुखरता प्रदान की। साथ ही, शास्त्र के विरूद्ध लोक के प्रतिरोध को सशक्त बनाने का काम किया। अंततः शास्त्र को लोक की ओर झुकने के लिए विवश होना पड़ा। हैवेल ने इस्लाम की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा "जैसे ही इस देश में मुस्लिम सत्ता प्रतिष्ठित हुई तो हिन्दू राजकाज से अलग कर दिए गए। ऐसी स्थिति में धर्म जो एकमात्र आश्रय रह गया था, की ओर लोगों का ध्यान गया।" यहाँ हैवेल ने मुस्लि सत्ता की स्थापना के साथ हिन्दुओं के राजकाज से अलग होने को भक्ति आंदोलन का कारण बताया है। लेकिन हैवेल के ये मत साम्राज्यवादी पूर्वाग्रह से प्रभावित हैं और कहीं-न-कहीं अंग्रेजों की 'फूट डाले और शासन करो' की नीति का प्रभाव उस पर देखा जा सकता है। हैवेले की तरह ही ताराचंद ने भी भक्ति आंदोलन को इस्लाम की देन बताया है और इसके उद्भव को पश्चिमी तट पर बसने वाले अरबों से जोड़कर देखा है। इस्लाम की भूमिका का वास्तविक मूल्यांकन आचार्य शुक्ल के द्वारा किया गया है। वे यह स्वीकार करते हैं कि भक्ति की परंपरा पूर्व से ही विद्यमान थी। तो वे इस्लाम की उत्प्रेरक के रूप में भूमिका को स्वीकारते हुए कहते हैं कि जब इस्लाम के आगमन ने भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के समक्ष संकट उत्पन्न किया, जो उस समय के हिन्दू-सांस्कृतिक अस्मिता का ही पर्याय है, तो वैसी स्थिति में दक्षिण से उत्तर की ओर चली आ रही भक्ति का प्रवाह तीव्र होता चला गया।

- <u>आलवारों का योगदान-</u>

उत्तर में भक्ति आंदोलन के उदय में आलवारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। दक्षिण भारत में चैथी से नवीं शताब्दी के दौरान भक्ति आन्दोलन का प्रचार और प्रसार हुआ जिसके पुरस्कर्ता आलवार संत थे। सवर्णों द्वारा आरोपित आचार संहिता के खिलाफ विद्रोह करते हए आलवारों ने उपासना के अधिकारों के सन्दर्भ में वर्ग-विशेष की बपौती की अवधारणा को तोड़ा। इनका आगमन मानवीय हक और अधिकार की अपेक्षा के साथ हुआ और इसमें सभी जातियाँ, स्त्रियाँ और अवर्ण शामिल हुए। आलावरों की भक्ति शास्त्रा नुमोदित भक्ति न होकर भावावेशमय भक्ति थी जिसमें शास्त्रों और शास्त्र द्वारा आरोपित नियमों की उपेक्षा की गई। भावावेग जब भी फूटेगा, तो नैसर्गिक भाषा में, कृत्रिम या आरोपित भाषा में नहीं। इसलिए आलवारों ने संस्कृत के वर्चस्व को तोड़ते हुए लोकभाषा को अपनाया और इसके फलस्वरूप भक्त और भगवान के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध की स्थापना संभव हो सकी। अब तक संस्कृत ने एक ऐसे बिचैलिये वर्ग को जन्म दिया था जो भगवान और भक्त के बीच प्रत्यक्ष संबंध को बाधिक कर रहा था। आलवारों ने मध्यस्थों की भूमिका को अस्वीकारते हुए अपने आराध्य को सीधा संबोधित किया। शास्त्रानुमोदित धर्म की व्यक्तिगत उपासना पद्धति के सापेक्ष आलवारों की भक्ति में सामूहिक उपासना पद्धति को अपनाया गया। इस तरह से आलवारो ने भक्ति को जनसमुदाय से जोड़ा।

- <u>प्रमुख दार्शनिकों की भूमिका-</u>

जिस समय आलवार संत षटकोप भक्ति का अलगख जगा रहे थे, उसी समय वैदिक ग्रंथों के पुनर्मूल्यांकन के क्रम में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। 'ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या' कहकर उन्होंने ब्रह्म की सत्यता और जगत् के मिथ्यत्व की घोषणा की। इसका विरोध करने के लिए जैसे समस्त भक्ति आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। शंकराचार्य के अद्वैतवाद से उत्तेजित होकर विद्वानों ने देश में एक आन्दोलन ही खड़ा कर दिया और वादों के प्रतिपादन का तो सिलसिला ही चल पड़ा। इनकी वेदांती व्याख्या की प्रतिक्रिया में ही विभिन्न दार्शनिक संप्रदाय अस्तित्व में आए। इसने भक्ति आंदोलन को न केवल राष्ट्रव्यापी पहचान दी, वरन् इससे भक्ति आन्दोलन को दार्शनिक आधार भी प्राप्त हुआ। भक्ति काव्य इसी वैचारिक भूमि पर भावना का उद्रेक है। बारहवीं शताब्दी में रामानुज ने आलवारों की भक्ति को ज्ञान से जोड़ते हुए भक्ति आंदोलन को दार्शनिक आधार प्रदान किया। उन्होंने भावना के साथ विचार का, लोक के साथ शास्त्र का मेल कराया। इन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्म के साथ-साथ जगत् की सत्यता को स्वीकार किया। रामानुज को पूरे समाज की मुक्ति और सामान्य मानव-कल्याण की चिन्ता थी। यह तभी संभव था जब जगत् को सत्य माना जाय। विशिष्टाद्वैतवाद के माध्यम से इन्होंने यह प्रतिपादित किया कि यदि कारण अर्थात् ब्रह्म सत्य है, तो उसके द्वारा संपादित कार्य जगत् भी सत्य होगा। जगत् को मिथ्या मानने वाला दर्शन जागतिक समस्याओं से भी मुख मोड़ लेता है इसलिए यह पलायनवादी संस्कृति का सूचक है। ब्रह्म और जीव में द्वैत का भाव नहीं है, वरन् वे अद्वैत स्थिति में हैं

और यह अद्वैत कैसा है? यह अद्वैत विशिष्ट प्रकृति का है क्योंकि इनके लिए मिलन साध्य नहीं, मिलन की चेष्टा ही साध्य हो जाती है। जीव की सार्थकता मिलन में नहीं है, वरन् मिलन का साक्षी बनकर महसूसने में है। इनका कहना था कि ईश्वर तक ज्ञान और भक्ति दोनों के द्वारा पहुँचा जा सकता है। ज्ञान के द्वारा सभी ईश्वर तक नहीं पहुँच सकते हैं। अतः भक्ति के द्वार सभी के लिए खोल दिए गए। उन्होंने लोक और शास्त्र के द्वंद्व के मद्देनजर बीच का रास्ता तलाशा- भक्ति के स्तर पर एकता और सामाजिक स्तर पर अनेकता की स्वीकृति। इस प्रकार भावावेश भक्ति को जैसे ही वैचारिक आधार मिला, तो उसका तीव्रगति से पुष्पन और पल्लवन हुआ। आगे चलकर रामानंद को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने आलवारों की भक्ति को उत्तर भारत तक पहुँचाने का काम कियाः

भक्ति द्राविड़ उपजी, लाये रामानंद।

प्रगट करी कबीर ने, सप्तद्वीप नवखण्ड।

रामानंद से ही भक्ति आन्दोलन की निर्गुण और सगुण, दोनों परंपराओं की शुरूआत होती है। निर्गुण भक्त जहाँ निर्गुण राम के उपासक थे और इनका राम नाम में तो विश्वास था, लेकिन रूप में नहीं; वहीं सगुण भक्त राम के नाम और रूप दोनों में आस्था रखते थे और सगुण भव से राम की उपासना करते थे। इस कड़ी में अगला नाम बल्लभाचार्य का जुड़ता है। बल्लभाचार्य भक्ति की भावधारा को निर्गुण से सगुण की ओर उन्मुख कर देते हैं। इनसे कृष्णभक्ति परंपरा की शुरूआत होती है। इन्होंने कृष्ण के लीलारूप का प्रचार किया और शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। इन्होंने ब्रह्म को विरूद्ध धर्मों से युक्त बतलाया। ईश्वर के नर-रूप की अभ्यर्थना इनकी अपार लोकप्रियता का कारण बना। इन्होंने अवतारवाद में आस्था व्यक्त करते हुए नरावतार को सभी अवतारों में लोकप्रिय बतलाया क्योंकि इस पर मानवमन सहज ही विश्वास कर सकता है।

- <u>सिद्धों-नाथों की भूमिका</u> इससे पहले कि भक्ति की यह भावधारा रामानंद के नेतृत्व में दक्षिण से उत्तर भारत पहुँचती, इसके लिए सिद्धों-नाथों द्वारा अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित की जा चुकी थीं। शास्त्र और शास्त्र प्रतिपादित धर्म की रूढ़ियों और

<u>3 सारांश</u> जन-जीवन के साथ घुल-मिलकर काव्य रचना करने वाले कवियों में खुसरो का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखी थीं। आदिकाल में खड़ीबोली को काव्य कीभाषाबनाने वाले वे पहले कवि हैं। विद्यापति को आचार्य शुक्ल ने फुटकल कवियों में रख दिया है, किन्तु आदिकाल के ये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। विद्यापति ने तीन भाषाओं में साहित्य लिखा संस्कृत, अपभ्रंश के एक रूप अवहट्ट और लोकभाषा मैथिली। विद्यापति को अपभ्रंश साहित्य का अन्तिम महत्वपूर्ण कवि और हिन्दी साहित्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि कहा जा सकता है।

<u>4 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)-</u> भक्ति आंदोलन , साहित्यिक पृष्ठभूमि, आध्यात्मिकता काव्यधारा, विद्यापति, जयदेव, पदावली, लौकिक शृंगार

5.अभ्यास (लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न)

1. आदिकाल का प्रथम कवि राहुल सांकृत्यायन ने किसे माना? 2. आदिकाल में रचित हिंदी का प्रथम महाकाव्य कौन सा है?

3. बीसलदेव रासो के रचयिता का नाम क्या है?

4. विद्यापति पदावली की रचना किस भाषा में हुई है?

5. आदिकाल के उस कवी का नाम बताइए जो खड़ीबोली में काव्य रचना करता था।

6. दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न-

1. अमीर खुसरो के काव्य पर विस्तृत समीक्षात्मक टिपण्णी प्रस्तुत कीजिए।

2. विद्यापति तथा अमीर खुसरो पर सिंक्षिप्त टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीजिए।

3. आदिकाल में लिखे गए प्रमुख रासो ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

4. आदिकालीन धार्मिक साहित्य का वर्गीकरण करते हुए इसके महत्व पार प्रकाश डालिए।

7. संदर्भ ग्रंथ सूची-

* हिन्दी साहित्य दर्शन डॉ आनंद नारायण शर्मा

* हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी

* हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956

* हिंदुई साहित्य का इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1950

BLOCK 2

भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

Unit-2

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य-

• भक्तिकाल के स्वरूप एंव महत्व की चर्चा करेंगे।

• भक्तिकाल के अर्थ एंव उनकी भूमिका का महत्व बता सकेंगे।

• भक्तिकालीन राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, एंव आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का चर्चा कर सकेंगे

1 प्रस्तावना

2 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

3 सारांश

4 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)-

5 अभ्यास (लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न)

6 दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न

6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 **प्रस्तावना**

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण काल है, जो लगभग 14वीं से 17वीं शताब्दी तक फैला हुआ है। भक्तिकाल में भक्ति को सर्वोपरि माना गया। इस युग के कवियों ने ईश्वर की भक्ति को अपने जीवन का ध्येय बनाया और इसे अपने काव्य में प्रमुखता से स्थान दिया। उन्होंने राम, कृष्ण, शिव, देवी आदि विभिन्न देवताओं की भक्ति की।इस काल में साधना और उपासना का मार्ग अत्यंत महत्वपूर्ण था। संत कवियों ने व्यक्तिगत साधना और ईश्वर की उपासना के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस काल के प्रमुख संतों में कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि शामिल हैं। भक्तिकाल के कवियों ने समाज सुधार की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, आडम्बरों और अंधविश्वासों का विरोध किया। जाति-पाति, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि सामाजिक बुराइयों का खंडन किया और समानता का संदेश दिया।इस काल में कवियों ने अपनी रचनाओं में सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। यह भाषा जनसामान्य के लिए सहज और सुलभ थी। अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, राजस्थानी आदि विभिन्न स्थानीय भाषाओं में रचनाएँ की गईं। तुलसीदास की 'रामचरितमानस' अवधी में और सूरदास की 'सूरसागर' ब्रजभाषा में लिखी गई।भक्तिकाल में भक्ति के दो प्रमुख धारा थे - सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति। सगुण भक्ति में भक्त ईश्वर को साकार रूप में मानते थे और उनकी मूर्ति या चित्र की पूजा करते थे। तुलसीदास और सूरदास सगुण भक्ति के प्रमुख कवि थे। निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार और निरंकार माना जाता था। कबीर और गुरु नानक निर्गुण भक्ति के प्रमुख प्रतिनिधि थे।इस काल में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। संत कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया। गुरु की महिमा का वर्णन अनेक भक्त कवियों ने किया है। कबीरदास ने गुरु को बड़ा महत्व देते हुए कहा है, "गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय, बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।" भक्तिकाल के काव्य में प्रेम और समर्पण की भावना प्रमुखता से विद्यमान है। भक्त कवियों ने ईश्वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति और प्रेम को व्यक्त किया। मीराबाई का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम इसका उत्तम उदाहरण है। उन्होंने अपने काव्य में ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और आत्मनिवेदन का भाव प्रकट किया है।भक्तिकाल के कवियों ने अपने काव्य में साधारण जनजीवन का सजीव चित्रण किया। उन्होंने अपने समय की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को बड़ी सजीवता और सरलता से प्रस्तुत किया। इनके काव्य में तत्कालीन समाज की झलक मिलती है।इस प्रकार, भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज सुधार, भाषा विकास और धार्मिक चेतना की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन प्रवृत्तियों ने भारतीय संस्कृति और समाज को एक नई दिशा दी और भविष्य के साहित्यिक और सामाजिक आंदोलनों को प्रेरणा दी।

2 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ-

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण काल है, जो 14वीं से 17वीं शताब्दी तक फैला हुआ है। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:

भक्ति भावना की प्रधानता भक्तिकाल में भक्ति को सर्वोपरि माना गया। इस युग के कवियों ने ईश्वर की भक्ति को अपने जीवन का ध्येय बनाया और इसे अपने काव्य में प्रमुखता से स्थान दिया। राम, कृष्ण, शिव, देवी आदि विभिन्न देवताओं की भक्ति की गई।

साधना और उपासना - इस काल में साधना और उपासना का मार्ग अत्यंत महत्वपूर्ण था। संत कवियों ने व्यक्तिगत साधना और ईश्वर की उपासना के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस काल के प्रमुख संतों में कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि शामिल हैं।

समाज सुधार-भक्तिकाल के कवियों ने समाज सुधार की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, आडम्बरों और अंधविश्वासों का विरोध किया। जाति-पाति, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि सामाजिक बुराइयों का खंडन किया और समानता का संदेश दिया।

भाषा की सरलता इस काल में कवियों ने अपनी रचनाओं में सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। यह भाषा जनसामान्य के लिए सहज और सुलभ थी। अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, राजस्थानी आदि विभिन्न स्थानीय भाषाओं में रचनाएँ की गईं। तुलसीदास की 'रामचरितमानस' अवधी में और सूरदास की 'सूरसागर' ब्रजभाषा में लिखी गई।

सगुण और निर्गुण भक्ति का भेद

भक्तिकाल में भक्ति के दो प्रमुख धारा थे - सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति। सगुण भक्ति में भक्त ईश्वर को साकार रूप में मानते थे और उनकी मूर्ति या चित्र की पूजा करते थे। तुलसीदास और सूरदास सगुण भक्ति के प्रमुख कवि थे। निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार और निरंकार माना जाता था। कबीर और गुरु नानक निर्गुण भक्ति के प्रमुख प्रतिनिधि थे।

गुरु की महत्ता इस काल में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। संत कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया। गुरु की महिमा का वर्णन अनेक भक्त कवियों ने किया है। कबीरदास ने गुरु को बड़ा महत्व देते हुए कहा है, "गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाय, बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।"

प्रेम और समर्पण की भावना भक्तिकाल के काव्य में प्रेम और समर्पण की भावना प्रमुखता से विद्यमान है। भक्त कवियों ने ईश्वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति और प्रेम को व्यक्त किया। मीराबाई का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम इसका उत्तम उदाहरण है। उन्होंने अपने काव्य में ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और आत्मनिवेदन का भाव प्रकट किया है।

साधारण जनजीवन का चित्रण भक्तिकाल के कवियों ने अपने काव्य में साधारण जनजीवन का सजीव चित्रण किया। उन्होंने अपने समय की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को बड़ी सजीवता और सरलता से प्रस्तुत किया। इनके काव्य में तत्कालीन समाज की झलक मिलती है।

भावुकता और रहस्यवाद भक्तिकाल के काव्य में भावुकता और रहस्यवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। कवियों ने अपनी भक्ति को भावुकता के साथ व्यक्त किया और कई बार ईश्वर के साथ अपने संबंधों को रहस्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया।

प्राकृतिक चित्रण इस काल के कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति का भी सुंदर चित्रण किया। प्राकृतिक दृश्य, ऋतु वर्णन, वन-उपवन, नदी-झरने आदि का वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है। भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज सुधार, भाषा विकास और धार्मिक चेतना की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन प्रवृत्तियों ने भारतीय संस्कृति और समाज को एक नई दिशा दी और भविष्य के साहित्यिक और सामाजिक आंदोलनों को प्रेरणा दी।

3 सारांश-

हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण कालखंड है, जो 14वीं से 17वीं शताब्दी तक फैला हुआ है। इस काल में भक्ति की भावना प्रमुख रही और इसे विभिन्न कवियों और संतों ने अपने काव्य और साहित्य में प्रमुखता से प्रस्तुत किया। भक्तिकाल का साहित्य मुख्यतः धार्मिक और भक्ति पर आधारित है, और इसका उद्देश्य व्यक्ति को ईश्वर के प्रति भक्ति और समर्पण के मार्ग पर ले जाना है।भक्तिकाल का साहित्य न केवल धार्मिक और भक्ति पर आधारित है, बल्कि समाज सुधार, भाषा विकास और सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस काल ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को एक नई दिशा दी और भविष्य के साहित्यिक और सामाजिक आंदोलनों को प्रेरित किया।

भक्तिकाल का साहित्य आज भी भारतीय समाज और संस्कृति में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और इसकी प्रवृत्तियाँ आज भी प्रासंगिक हैं।

4 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)- भक्तिकाल, हिंदी साहित्य, ईश्वर, राम, कृष्ण, शिव, देवी, संत कवि, मोक्ष प्राप्ति, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई

5 **अभ्यास** (**लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न**)

1. भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों की सूची बनाइए।
2. भक्तिकाल में सगुण और निर्गुण भक्ति का क्या महत्व है**?**
3. भक्तिकाल के कवियों ने समाज सुधार के लिए क्या प्रयास किए**?**
4. भक्तिकाल की भाषा की सरलता का महत्व क्या है**?**
5. गुरु की महत्ता भक्तिकाल में क्यों महत्वपूर्ण मानी गई**?**

6 दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न

1. भक्तिकाल में प्रेम और समर्पण की भावना का किस प्रकार चित्रण हुआ है**?**
2. साधारण जनजीवन का चित्रण भक्तिकाल के साहित्य में कैसे किया गया है**?**
3. भावुकता और रहस्यवाद का भक्तिकाल के काव्य में क्या स्थान है**?**
4. प्राकृतिक चित्रण का भक्तिकाल के साहित्य में क्या महत्व है**?**
5. भक्तिकाल के कवियों ने किस प्रकार से भाषा का प्रयोग किया है**?**

7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- हिन्दी साहित्य दर्शन डॉ आनंद नारायण शर्मा
- हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी
- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956
- हिंदुई साहित्य का इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1950

BLOCK 3

निर्गुण काव्यधारा (ज्ञान मार्ग और प्रेम मार्ग)

UNIT-3

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत निर्गुण काव्यधारा को संपूर्णता में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ज्ञानमार्गी काव्यधारा को समझ पायेंगे।
- प्रेमाख्यानक काव्यधारा/सूफी काव्यधारा को समझ पायेंगे।
- ज्ञानमार्गी काव्यधारा की प्रवृत्तियों को समझ पायेंगे।
- सूफी काव्यधारा की प्रवृत्तियों से अवगत होंगे।
- ज्ञानमार्गी एवं प्रेममार्गी काव्यधारा में अन्तर समझ पायेंगे।

1 प्रस्तावना

2 संत काव्यधारा (ज्ञानमार्गी काव्यधारा)

3 सिद्ध-नाथ संत और कबीर

4 संत काव्यधारा की सामाजिक पृष्ठभूमि

5 प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ

- संत काव्य का दार्शनिक आधार
- प्रेम का महत्व
- अनुभूति की प्रामाणिकता
- सामाजिक-आर्थिक विषमता पर प्रहार

- शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
- कबीर की भाषा
- उलट-बासी
- रस और अलंकार
- सूफी काव्यधारा/प्रेमाख्यान काव्यधारा (प्रेममार्ग)
- प्रेमाख्यानक काव्य की परंपरा
- प्रेमाख्यानक काव्य का दार्शनिक आधार
- लोक और लोक संस्कृति का समावेश
- काव्यरूप

6 सारांश

7 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)

8 अभ्यास प्रश्न (लघुउत्तरीय प्रश्न)

9 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रस्तावना-

भक्ति काव्य धारा को दो वर्गों में विभाजित करके अध्ययन किया जाता है। एक सगुण भक्ति काव्यधारा एवं दूसरा निर्गुण भक्ति काव्यधारा। सगुण भक्ति काव्यधारा अवतारवाद को स्वीकार करता है जबकि निर्गुण भक्ति का आलंबन निराकार है। यही कारण है कि सगुण भक्ति पर आस्था रखने वाले साधकों ने निर्गण भक्ति को लेकर तरह-तरह की शंकाएँ उठाई हैं। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि निर्गुण ब्रह्म का संबंध ज्ञान मार्ग से और सगुण ब्रह्म का भक्ति के साथ। शंकराचार्य ने ज्ञान और भक्ति तथा निर्गुण और सगुण का विरोध करते हुए निर्गण से सम्बद्ध किया है। साथ ही उन्होंने निर्गुण ब्रह्म और ज्ञान साधना को ही परम सत्य के रूप में स्वीकार किया है। निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति के आलम्बन के स्वरूप में स्थूल अन्तर तो यह है कि निर्गुण भक्ति का आलम्बन निराकार और अगोचर है तथा सगुण भक्ति का आलम्बन साकार एवं गोचर है। किन्तु, यह साकार एवं गोचर आलम्बन अपने आकार के अतिरिक्त अन्य गुणों में निराकार से समानता रखता है। निर्गुण काव्यधारा को दो वर्गों में विभाजित कर अध्ययन करते हैं- (1) संत काव्यधारा या ज्ञानमार्गी काव्यधारा (2) सूफी काव्यधारा या प्रेममार्गी काव्यधारा।

2 संत काव्यधारा (ज्ञानमार्गी काव्यधारा)

हिन्दी साहित्य के धरातल पर भक्ति आंदोलन का आविर्भाव कबीर और उनकी रचनाओं से होता है। वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनकी ब्रह्म के रूप और आकार में आस्था नहीं थी। इनमें जागतिक सत्ता के प्रति वैराग्य का भाव और आध्यात्मिक सत्तसा के प्रति अनुराग का भाव था। इनके लिए सबों का कल्याण ही अभीष्ट था। आगे चलकर कबीर की इस निर्गुण परंपरा में दादू दयाल, रज्जब, सेना, रैदास, नानक आदि का आगमन होता है। ये ब्रह्म और जीव के अद्वैतत्व पर जोर देते थे। इसके लिए ये ज्ञान और योग-मार्ग की वकालत करते थे। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने इनके द्वारा सृजित काव्यधारा को ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की संज्ञा दी. लेकिन राम कुमार वर्मा ने इसके लिए एक सहज नाम संत काव्यधारा सुझाया जो अधिक लोकप्रिय हुआ। इन धारा के रचनाकारों को संत कहा गया। संत का शाब्दिक अर्थ होता है- निर्लिप्त वीतरागी। ये दुनियावी माया-मोह से मुक्त थे। इनका अनुराग आध्यात्मिक सत्ता के प्रति था। ये सबका भला चाहते थे. इसीलिए इन्होंने धर्म और समाज के उन तमाम पहलुओं का प्रहार किया जो मनुष्य और मनुष्यता को छल और छील रहे थे। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें ये 'मानुष सत्य' का प्रतिपादन करते हैं। वर्ग, जाति, धर्म और संप्रदाय के भेद से परे हटकर मनुष्य-मात्र के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित करते हैं। इन्होंने प्रेम के ही धरातल पर मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का प्रयत्न किया है।

3 सिद्ध-नाथ संत और कबीर

आचार्य शुक्ल ने कबीर को सिद्धोंनाथों की पृष्ठभूमि में रखकर देखा और बतलाया कि सिद्धों-नाथों ने कबीर और कबीर प्रवर्तित संत-मत के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है "वे ही शब्द, वे ही राग-रागनियाँ, वे ही पारिभाषिक शब्द कबीर आदि संतोंके यहाँ मिलते हैं जिसका प्रयोग सिद्ध-नाथों के यहाँ मिलता है।" यदि गौर किया जाए, तो संदर्भ गुरू की महत्ता का हो या निर्गुण ब्रह्म की साधना का, ये विशेषताएँ कबीर एवं अन्य संत कवियों को सहज ही सिद्धों-नाथों की परंपरा से जोड़ देती है। इसी कारण संत-काव्य को आलोचकों ने प्रभावोत्पन्न साहित्य' की संज्ञा दी है। लेकिन, न तो कबीर वही हैं जो सिद्ध-नाथ संत हैं और न ही कबीर की साधना-पद्धति वही है जो सिद्धों-नाथों की। समानता की तुलना में असमानता के तत्त्व कहीं अधिक विद्यमान हैं। कबीर के यहाँ न तो गार्हस्थ जीवन के प्रति तिरस्कार का भाव और न ही वे अंतः साधना के इर्द-गिर्द सिमटे रहते हैं। न उनके यहाँ माँस-मदिरा के ललक है और न ही चमत्कार-प्रदर्शना कबीर नामपंथियों से भ्ज्ञी भिन्न हैं। कबीर जिस साधना-पद्धति का अनुसरण करते हैं. इस पर हठयोग का प्रभाव तो है, लेकिन वह हठयोग से भिन्न है। कबीर अपनी साधना पद्धति में योग और भक्ति का समन्वय करते हुए आठवें चक्र के रूप में सुरति कमल चक्र की कल्पना करते हैं, जहाँ साधक स्मृति के आधार पर ब्रह्म के साथ अद्वैतत्व को स्थायी रूप से बनाए रख सकता है। सिद्धों-नाथ से कबीर की इस भिन्नता के संकेत उनकी रचनाओं में मिलते हैं जिसमें उन्होंने उनकी आलोचना की है। वे नामपंथियों की आलोचना करते हूए लिखते हैं-

अवधू भूलो को घर लावे, सो जन हमको भावे।

घर में जोग, भोग घर में ही, घन तजि वन नहिं जावे।।

वे सिद्धों-नार्थों पर प्रहार करते हुए लिखते हैं-

सहज-सहज कब कोय कहै, सहज न चीन्हें कोई।

जिन सहजे विषया तजि, सहज कही जै सोई।।

कबीर की विशिष्टता इस बात में है कि इन्होंने प्रेम के आधार पर मनुष्य-मात्र की एकता कोघोषणा की है। इसके विपरीत सिद्धों नाथों में आम जनता के प्रति तिरस्कार का भाव था। उनका व्यवहार आम जनता में कुंठा और हीनता गंथि को जन्म दे रहा था। उनकी साधना व्यक्ति को समाज से तोड़ने का काम कर रही थी। ऐसी स्थिति में कबीर व्यक्ति को आंतरिक एवं बाह्य स्तर पर जोड़ने का संदेश लेकर आते हैं। कबीर जोड़ने का यह काम प्रेम-तत्त्व के धरातल पर करते हैं। इस क्रम में उनका संघर्ष उन तमाम शक्तियों से होता है जो समाज को बाँटने का काम करती हैं या जो सामाजिक शोषण-उत्पीड़न को धार्मिक एवं नैतिक औचित्य प्रदान करती है। स्पष्ट है कि कबीर की क्रांतिकारी भूमिका साधारण जनता को सिद्धों-नाथों के अंतस्साधनात्मक आतंक से मुक्त कराने में है, न कि उनके पीछे चलने में। इस तथ्य को समझे बिना न तो कबीर को समझा जा सकता है और न ही कबीर प्रवर्तित संत-मत को।

4 संत काव्यधारा सामाजिक पृष्ठभूमि

संत काव्यधारा में शामिल कवियों की सामाजिक पृष्ठभूमि में समानता के तत्व विद्यमान हैं। कबीर यदि जुलाहा थे, तो दादू बुनकर; सेना नाई थे, तो सदना कसाई और रैदास चमार। इसी संदर्भ में संत काव्यांदोलन को कामगारों का आंदोलन कहा गया है। सुंदरदास को यदि अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए, तो सारे के सारे संत अशिक्षित थे। इन्होंने जैसी भी जिंदगी जी, जो कुछ भी महसूस किया, उसी को अपनी रचनारओं में अभिव्यक्ति दी। ये सारे के सारे लोग उस समुदाय से आते थे जिन्हें शास्त्रवाद एवं ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने हिंदू समाज के हाशिए पर ला पटका था, जहाँ वे 'न हिन्दू-न मुसलमान' वाली स्थिति में रहने और जीने को अभिशप्त थे। ये उस व्यवस्था के हाथों शोषण और उत्पीड़न के शिकार थे जिसके शीर्ष पर सामंतवाद एवं पुरोहितवाद का गठबंधन मौजूद था। इसलिए इन रचनाकारों की रचनाओं में भुक्तभोगी की पीड़ा बोलती है। इनके स्वरों में आक्रोश, अक्खड़ता और उग्रता का सामंजस्य मिलता है। शैली के स्तर पर इनमें जो भी भेद हो. लेकिन संवेदना के धरातल पर उनके स्वरों में एकता थी।

5 प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ

- **संतकाव्य का दार्शनिक आधार-**

दक्षिण भारत में भक्ति की धारा में समग्रता थी। यह समग्रता रामानंद तक दिखती है, लेकिन रामानंद की शिष्य-परंपरा में आकर भक्ति निर्गुण और सगुण के रूप में, दो धाराओं में विभाजित हो जाती है। इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीर यह कहते हुए दशरथ के पुत्र राम को ब्रह्म मानने से इंकार करते हैं-

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।'

वे अपने ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं- निर्गुण राम जपहु रे भाई।

अविगत की गति लखि न जाई। यहाँ पर कबीर उस राम की उपासना करने का संदेश देते हैं जो निराकार है, अरूप है, असीम हैं और अगोचर हैं। संत कवि इसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं और उनकी साधना का लक्ष्य है उस निर्गुण ब्रह्म के साथ अद्वैतत्व की प्राप्ति। संत कवि अद्वैतवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। वे ब्रह्म और जीव के बीच अद्वैतत्व की बात करते हैं और दोनों के बीच दिखने वाले भेद को मायासृजित मानते हैं। उनका मानना है कि जीव अपनी अज्ञानता के कारण ब्रह्म के साथ अपने अद्वैतत्व को नहीं जान पाता है। इसके लिए संत कवि जिस साधना-पद्धति को अपनानते हैं, वह साधना-पद्धति हठयोग पर आधारित है। ब्रह्म और जीव के अद्वैतत्व का संकेत करते हुए रैदास लिखते हैं-

प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग वास समानी।

प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जिसकी जोति बढ़े दिन-राती।

रैदास की दृष्टि में जो संबंध चंदन और पानी, दीपक और बत्ती के बीच है, वहीं सबंध ब्रह्म और जीवात्मा के बीच है। लेकिन, माया ने दोनों के बीच भेद को सृजित कर रखा है। इसीलिए माया को धिक्कारते हुए कबीर कहते हैं-

माया महाठगिनी हम जानी।

त्रिगुनी फाँस लिए कर डोले, बोले मधुरि बानी। यह माया पूरे जगत को व्याप चुकी है। इसने पूरे के पूरे जगत को सत्, रज और तम इन तीन गुणों में बाँ रखा है। इसलिए ब्रह्म का साक्षात्कार तभी संभव है जब इन तीन गुणों से परे जाकर साधक ब्रह्म से प्रेम कर सके- सतगुण रजगुण तमगुण कहिबे, यह सब तेरी माया।

चैथे पद को जो सब चीन्हें, तीन्हि सकल पद पाया।

इन तीनों गुणों से परे जाकर चैथे पद, जो इन तीन गुणों से परे हैं, को पहचानने के लिए भ्रम और अज्ञान से मुक्त होना आवश्यक है। इसके लिए ज्ञान आवश्यक है जो गुरू के पास उपलब्ध है। गुरू ही ब्रह्म क रहस्य का उद्घाटन करके

साधक को ब्रह्म के साथ उसके अद्वैत संबंध की जानकारी देता है। इसलिए संत साधकों के यहाँ गुरू का महत्व गोविन्द से भी ज्यादा है-

गुरू गोविन्द दोउ खड़े, काको लागो पाँव।

बलिहारी गुरू आपनो, जिन गोविन्द दियो बताय।

साधक को गुरू से ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह ब्रह्म के साथ अद्वैतत्व की प्रापित के लिए प्रयत्नशील होता है। जब उसका साक्षात्कार ब्रह्म से परे है, तो वह पाता है-

गुरू-गोविन्द तो एक है, दूजा है आकार।

स्पष्ट है कि संत साहित्य में ब्रह्म, जीव और जगत के अंतर्संबंध का उद्घाटन किया गया है और इसीलिए यह अपने स्वरूप में रहस्यवादी है। इसका विषय अमूर्त है और यह अमूर्त ब्रह्म के साथ मूर्त जीव के मिलन की प्रक्रिया को उद्घाटित करता है। यह पूरी-की-पूरी प्रक्रिया अमूर्त है, इसीलिए यह रहस्य है।

- <u>प्रेम का महत्व</u>

स्पष्ट है कि संत कवि बुनियादी मानवीय सरोकारों से प्रेरित थे। इन्हीं मानवीय सरोकारों ने उन्हें अगर समाज के साथ-साथ धर्म की रूढ़ियों और कर्मकांडों के विरोध के लिए उत्प्रेरित किया, तो इन्हीं सरोकारों ने इन्हें शास्त्र और शास्त्र प्रतिपादित धर्म की विभाजनकारी भूमिका के विकल्प के रूप में प्रेम और भक्ति की ओर उन्मुख किया। इन्होंने देखा कि जहाँ शास्त्रीय और शास्त्र प्रतिपादित धर्म समाज को तोड़ता है, वहीं प्रेम समाज को जोड़ता है। इसलिए वर्ण, जाति, धर्म और संप्रदाय के तमाम भेों को निरस्त करते हुए वे प्रेम के पाठ पढ़ने का संदेश देते हैं-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढ़ाई आखर प्रेम का, पढे सो पंडित होय।

अर्थात् पुस्तकों और ग्रंथों को पढ़ते-पढ़ते जग मर गया, लेकिन कोई भी सच्चे अर्थों में पडित नहीं बन सका। वही मनुष्य पंडित बन सकता है जो प्रेम के ढाई आखर को पढ़ने की कोशिश करता है। प्रेम के इसी पाठ को पढ़ने की कोशिश दादू ने भी की, तभी तो वे कह सके-

दोनों भाई हाथ-पग, दोनों भाई कान। दोनों भाई आँख हैं, हिन्दू और मुसलमान ।

यहाँ पर दादू हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की राजनीतिक और सांप्रदायिक टकराहट की पृष्ठभूमि में धार्मिक-सांप्रदायिक सौहार्द्र की प्रस्तावना करते हैं। इसके लिए वे हिन्दुओं और मुसलमानों को दो हाथ, दो पैर, दो कान और दो आँख बतलाते हैं। आशय यह है कि दोनों का भला, दोनों की पूर्णता एक दूसरे के साथ मिलकर रहने में है। यह प्रेम की कबीर के काव्य का मानुष-सत्य बनकर आता है। इनका प्रेम मानव मात्र के प्रति प्रेम तक सीमित नहीं है।

दिन भर रोजा रखत है, रात हनत है गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसी खुशी खुदाय।

आशय यह कि मुसलमान दिन में रोजा रखते हैं और रात में गौकुशी करते है। इस गोकुशी (गाय की हत्या) के जरिए वे खुदा की बंदगी करते हैं। अब तुम ही बताओ कि खुदा अपने ऐसे बंदों से कैसे खुश हो?

अनुभूति की प्रामाणिकता

संत कवि उस सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि से आते थे जो शास्त्र और शास्त्र प्रतिपादित धर्म के हाथों शोषण-उत्पीड़न का शिकार था। वे शास्त्रवाद का खण्डन करते हुए 'आँखिन देखी' सच का बयान करते हैं। इनकी रचनाएँ टटकी अनुभूतियों से साक्षात्कार है। इनका विश्वास स्वानुभूत सत्य में हैं, जबकि शास्त्रवाद दूसरे के भोगे गए जीवन-सत्य को आधार बनाता है-मैं कहता आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी। मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरूझाई रे।।

सामाजिक-आर्थिक विषमता पर प्रहार

संत कवियों ने देखा कि किस प्रकार शास्त्र न केवल समाज को विभाजित कर रहा है, वरन् इसके द्वारा सामाजिक अन्याय को भी संरक्षण दिया जा रहा है। इसलिए वे सामाजिक रूप से अनुचित और अन्याय को प्रोत्साहन देने वाले शास्त्र और धर्म पर प्रत्यक्षतः और परोक्षतः हमला बोलते हैं- जो तू बाभन-बभनी जाया, आन बाट है क्यों नहीं आया। जो तू तुरूक-तुरकिनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।

- शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

केसरी कुमार ने कबीर की भाषा के संदर्भ में लिखा है कि 'कबीर की कविता उस अनगढ़ पत्थर की तरह है कि जिसकी असली मारक क्षमता उसके अनगढ़पन से ही पैदा हुई है।' कबीर की भाषा का यह अनगढ़पन इसकी सीमा नहीं, वरन शक्ति है। कबीर की भाषा सिद्धों-नाथों की भाषा से प्रभावित है। सिद्धों-नाथों की घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण इसमें

विभिन्न भाषाई तत्वों का समाहार मिलता है। इसलिए इसे सधुक्कड़ी भाषा की संज्ञा दी गई और यह संस्कृत और अपभ्रंश के अभिजात्य के प्रति विद्रोह का प्रतीक बनी। आक्रामकता, फक्कड़ता और व्यंग्य कबीर की भाषा के प्राण हैं।

- **<u>कबीर की भाषा</u>** कबीर ने लोक प्रचलित प्रतीकों और उपमानों के प्रयोग के जरिए अपनी काव्य-भाषा को अधिक संप्रेषणीय बनाया है। कबीर ने अपभ्रंश के लोकप्रिय छंद 'दोहा' का विशेष रूप से प्रयोग किया है, लेकिन इसमें 48 मात्राओं की अनिवार्यता नहीं है। जहाँ तक काव्य-रूप का प्रश्न है, तो कबीर की रचनाएँ मुक्तक काव्य-रूप के उदाहरण हैं।
- <u>उलट-बाँसी</u> संत कवियों ने उलट-बाँसियाँ लिखी हैं। उलट-बाँसी उलट-कथन की शैली है। इसके जरिए संत कवियों ने अपनी रहस्य-साधना को अभिव्यक्ति देने की कोशिश की। इन उलट-बाँसियों के आशय को समझाने का प्रयास किया जाता है, तो इन दोहों के अर्थ खुलते चले जाते हैं। इनका मानना था कि लौकिक जीवन का प्रवाह सीधा होता है और आध्यात्मिक जीवन का प्रवाह उल्टा होता है। अतः लौकिक जीवन के अनुभव से आध्यात्मिक जीवन को नहीं समझा जा सकता है। इसलिए सिद्धों-नाथों ने अपनी रहस्य-साधना को अप्रकट रखने के लिए उलट-बाँसी की परंपरा चलाई और इन उलटबांसियों के जरिए ही आम जनता में अपनी साधना का आतंक पैदा किया था। अपनी उलटबाँसियों के जरिए कबीर ने एक ओर पाँच पांडित्य के आतंक का मुकाबला पांडित्य के धरातल पर किया, वहीं लोक-प्रचलित प्रतीकों एवं उपमानों का प्रयोग कर इन उलटबाँसियों को आम जनता के बीच संप्रेषणीय भी बनायाः

कबीर के दोहों को साखियाँ कहा जाता है। साखियों से तात्पर्य है अनुभूति जन्य साक्ष्य। कबीर के दोहों को साखी कहा जाता है क्योंकि उनके दोहे 'आँखिन देखी' के बयान है।। इसी प्रकार 'सबद' ब्रह्म का पर्याय है और इसके जरिए उन्होंने अपनी ब्रह्म संबंधी अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

- <u>रस और अलंकार</u>

कबीर के दोहों के उन अंशों में शांत रस उपस्थित है जहाँ आध्यात्किता विद्यमान है। 'सूरमा अंग' के वीर रस है, तो ब्रह्म जीव दाम्पत्य संबंध की अभिव्यक्ति में शृंगार रसा सामाजिक विषमता पर प्रहार से संबंधित दोहों में हास्य और व्यंग्य को अभिव्यक्ति मिली है, तो ब्रह्म-जीव वात्सल्य संबंध की अभिव्यक्ति के क्रम में वत्सल रस। जहाँ तक अलंकारों के प्रयोग का प्रश्न है, तो उनकी उलट-बाँसियाँ असंगति एवं विरोधाभास अलंकारों से भरी पड़ी है। साथ ही, इनके दोहों में रूपकों की भरमार है।

- <u>सूफी काव्यधारा/प्रेमाख्यान काव्यधारा (प्रेममार्ग)</u>

जिस प्रकार दक्षिण भारतीय भक्ति उत्तर भारत पहुँचकर लोक और शास्त्र में द्वंद्व की पृष्ठभूमि में सगुण और निर्गुण के रूप में दो धाराओं में विभाजित हो जाती है, ठीक उसी प्रकार सिद्धों-नाथों की पृष्ठभूमि में जहाँ निर्गुण भक्ति की संत काव्यधारा और आविर्भाव होता है। और सूफी मत की पृष्ठभूमि में प्रेमाख्यानक काव्यधारा का। निर्गुण भक्ति की जो धारा सूफी मत से प्रभावित है, उसे प्रेमाख्यानक काव्यधारा की संज्ञा दी गई। कारण यह कि सूफी साधना पद्धति में प्रेम मार्ग पर जोर दिया गया है और इन रचनाओं में सूफी दर्शन को लौकिक प्रेमाख्यानों के आवरण में लपेटकर प्रस्तुत किया गया। इसलिये कई बार इसे सूफी काव्यधारा भी कहा जाता है। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ शब्द से हुई है। अरबी-फारसी में इसका प्रयोग ऊन के अर्थ में किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में मोटे सफेद ऊन कपड़े को धारण करने वाले उन फकीरों को सूफी कहा गया जो परमात्मा के प्रेम में मगन रहते थे और इस प्रेम में जिन्हें सांसारिकता से अलग कर रखा था।

- <u>प्रेमाख्यानक काव्य की परंपरा</u>

सूफी मत इस्लाम के उदार मानवतावादी चेहरे का प्रतिनिधित्व करता है। इसी से प्रेरित होकर सूफी मत से प्रभावित लोगों के ऐसे समूह का आविर्भाव हुआ जिन्होंने मानुष सत्य के उद्घाटन को अपनी रचना का प्रतिपाद्य बनाया, लेकिन सूफी मत से संबद्धता के बावजूदप्रेमाख्यान काव्यधारा से जुड़े रचनाकारों की दृष्टि संप्रदाय-सापेक्ष न होकर मूल्य-सापेक्ष थी। यही यह पृष्ठभूमि है जिसमें मानुष्यता के सामान्य रूप को लेकर प्रेमाख्यानक काव्य-परंपरा का सूत्रपात होता है। निश्चय ही प्रेमाख्यान काव्य-परंपरा का नाम लेते ही हमारे मानस पटल पर पहला नाम उभरकर आता है जायसी और उनके पद्मावत का। प्रेमाख्यानक काव्य की परंपरा पहले से विद्यमान थी और इसीलिये पद्मावत पहला प्रेमाख्यानक काव्य नहीं है। प्रेमाख्यानक काव्य की इस परंपरा की शुरूआत होती है- मुल्ला दाउद की रचना 'चंदायन' से। मुल्ला दाउद ने इसमें लोरिक और चंवा की लोक-प्रचलित प्रेम-कथा के आवरण में सूफी मत और इसमें प्रचलित विश्वासों को अभिव्यक्ति दी है। लेकिन, चंदायन पर प्राकृत और अपभंदरश के भारतीय प्रेमाख्यानों के असर को भी सहज ही लक्षित किया जा सकता है। मुल्ला दाउद के बाद कुतुबन 'मृगावती' को लेकर उपस्थित होते हैं। इसमें उन्होंने चंद्रनगर के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी मृगावती की प्रेम-कथा का वर्णन किया है।

- <u>प्रेमाख्यानक काव्य का दार्शनिक आधार</u>

सूफी मत का आविर्भाव ईरान में होता है। ईरानी समाज मातृसत्तात्मक समाज है, इसीलिये सूफी मत में ब्रह्म की परिकल्पना स्त्री के रूप में की गई है। सूफी-दर्शन में यह माना जाता है कि अलौकिक नूर अर्थात् ब्रह्म खुद को लौकिक हूर अर्थात् स्त्री के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसीलिये साधना में निषेध नहीं, रूप की स्वीकृति है। वहाँ पर यह माना जाता है कि लौकिक हूर अर्थात् रूप के जरिये ही अलौकिक नूर अर्थात् अरूप ब्रह्म

तक पहुँचा जा सकता है। यही कारण है कि सूफी साधना पद्धति में नारी को साधना के मार्ग में बाधक मानने के बजाय अनिवार्य माना गया है।

<u>लोकभाषा और लोकसंस्कृति का समावेश</u>

प्रेमाख्यानक कवियों ने सूफी-दर्शन के मूल संदेश को लोक-संस्कृति और लोकभाषा के आवरण में प्रस्तुत

किया है। इसलिए यह कहीं अधिक संप्रेषणीय बन आया है। विशेष रूप से विरह-वर्णन के क्रम में ये बारहमासे का सहारा लेते हैं और प्रकृति में आने वाले परिवर्तनों के सापेक्ष नायिका के अंतहीन विरह को प्रस्तुत कर विरह-वेदना की मार्मिकता को अभिव्यक्ति देने हैं। इस क्रम में इन्हें ऊहात्मकता अर्थात् अतिश्योक्तिमूलक चित्रण का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन, इस चित्रण को वे बिहारी की तरह मात्रात्मक नाप-जोख पर आधारित नहीं बनाते। इसे संवेदना के धरातल पर चित्रित करते हैं जिसके कारण विरह की गंभीरता बनी रहती है। नागमती की विरह-वेदना को अभिव्यक्ति देते हुए जायसी लिखते हैं-

बरसे मघा झकोरी-झरकोरी। मोर दुइ नैन चुवहि जसि ओरी ।।

वर्षा-ऋतु आ चुकी है और इसके साथ धरती और आकाश का विरह समाप्त हो चुका है। मघा नक्षत्र में मूसलाधार वर्षा होती है और खपड़े वाले घर में ओरियों से बारिश की बूंदे आंगन में लगातार गिर रही है। क्षणभर के लिए नागमती को ऐसा लगता है कि यह ओरी नहीं, उसकी आँखें हैं और उससे गिरने वाली पानी की बूँदें न होकर उसकी आँखें से गिरने वाले आँसू। यहाँ पर मघा और ओरी जैसे शब्दों को लोक-संस्कृति से उठाया गया है। इसके जरिये नागमती के विरह की प्रभावी अभिव्यक्ति संभव हो सकी है। प्रेमाख्यानक कवियों को लोकभाषा अवधी को साहित्यिक भाषा का दर्जा दिलाने का श्रेय जाता है। यद्यपि अवधी का प्रयोग हमे तुलसी के मानस में भी देखने को मिलता है, लेकिन लोक-संस्कति के गहरे स्तर पर संपृक्त लोक भाषा की जो मिठास हमें जायसी के अवधी में मिलती है, वह तुलसी के यहाँ नहीं। इसी में मुल्ला दाउद के चंदायन, जायसी के पद्मावत, मंझन की मधुमालती, उस्मान की चित्रावली और शेख निसार की 'यूसफू- जुलेखा' को अपार लोकप्रियता दिलायी।

- <u>काव्यरूप</u>

प्रेमाख्यानक काव्य की रचना प्रबंधों के रूप में की गई लेकिन ये प्रबंध की तुलना में कथाकाव्य की संकल्पना के अधिक करीब है। वस्तुतः इन्हें भारतीय आख्यानक काव्य की परंपरा से जोड़कर देखा जा सकता है जिनमें एक कथा शुरू होती है और पहली कथा समाप्त होने से पहले ही दूसरी और फिर तीसरी कथा शुरू होती चली जाती है। कथाओं का एक असमाप्त क्रम बन जाता है। दूसरी बात यह कि इनहें महाकाव्य की भी संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि न तो

उनका उद्देश्य लोकमंगलकारी है और न ही ये चिरंतन मूल्यों को प्रतिष्ठा करते हैं। समस्त प्रेमाख्यानक काव्यों में पद्मावत को ही कुछ हद तक ऐसा प्रबंध माना जा सकता है जिसमे ं कुछ हद तक महाकाव्यात्मकता का निर्वाह हुआ है। इन रचनाओं के प्रबंधत्व में एक प्रमुख समस्या अवांतर प्रसंगों का महत्वपूर्ण हो जाना है जिसके कारण आधिकारिक कथा का क्रम बाधित होता है।

6 <u>सारांश-</u>

ऐसी कथाएँ जिनका कथानक की मुख्य-धारा के साथ सीधा संबंध न हो, अवांतर कथा कहते हैं। आचार्य शुक्ल ने प्रेमाख्यानक काव्य में अवांतर प्रसंगों की भर्ती को आधिकाधिक कथा के विकास में बाधक माना है, किंतु प्रेमाख्यानक काव्य में अवांतर-प्रसंगों के जरिए न केवल लोक-संस्कृति का विस्तार से चित्रण किया गया है, वरन् इसके जरिए ही रचनाकार ने कथा में निहित अपने दार्शनिक मंतव्यों को स्पष्ट किया है। इस अवांतर प्रसंगों के जरिए इन कवियों ने हिंदू घरों में प्रचलित कथाओं को उन्हीं की बोली में कहकर अपने मंतव्य को उन तक पहुँचाने की कोशिश की है और हिंदू-मुस्लिम अजनबीपन को दूर करते हुए सांप्रदायिक सौहार्द्र कायम करने की कोशिश की है। यही नहीं, इन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के जरिए लोक और शिष्ट, लोकभाषा और फारसी, सामान्य और अभिजात, हिंदुओं और मुसलमानों में सामंजस्य स्थापित करते हुए समाज के दो परस्पर विरोधी वर्ग को एक दूसरे के करीब लाने का प्रयास किया। इसी कारण ये रचनाएँ अपनी व्याप्ति के कारण समाज के हर तबके को छूती है। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने जायसी के बारे में लिखा है कि 'जायसी ने एक मुलसमान होने के बावजूद मनुष्य होने का परिचय दिया।'

<u>7- **कीवर्ड्स (संकेत शब्द)-**</u> **काव्य धारा, सगुण भक्ति, काव्यधारा , ब्रह्म, शंकराचार्य, ज्ञान, भक्ति, आलम्बन, स्वरूप**

8 **अभ्यास-प्रश्न (लघुउत्तरीय प्रश्न)**

1. निर्गुण काव्यधारा का आशय स्पष्ट कीजिए।

2. ज्ञानमार्गी काव्यधारा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3. प्रेममार्गी काव्यधारा को स्पष्ट कीजिए।

4. निर्गुण काव्यधारा में प्रेम के महत्व पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5. ज्ञानमार्गी एवं प्रेममार्गी काव्यधारा में अंतर स्पष्ट कीजिए।

9 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. ज्ञानमार्गी काव्यधारा की प्रवृत्तियों का उल्लेख करें।

2. प्रेमाख्यानक काव्यधारा की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

3. निर्गुण काव्यधारा को स्पष्ट करते हुए संत काव्य की विशेषताओं को स्पष्ट करें।

4. निर्गुण काव्यधारा से आप क्या समझते हैं? सूफी काव्यधारा की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालें।

5. ज्ञानमार्गी एवं प्रेममार्गी काव्यधारा में अन्तर स्पष्ट करते हुए उनकी विशेषताओं को स्पष्ट करें।

10 <u>संदर्भ ग्रंथ सूची</u>

* हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल

* हिन्दी साहित्य इतिहास भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी

* हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) डॉ नगेन्द्र

* हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (1965) गणपति चंद्र गुप्त

BLOCK 4

निर्गुण कवि और उनकी रचनाएँ

UNIT-4

इकाई की रूपरेखा:

उद्देश्य

- इस इकाई के अन्तर्गत निर्गुण कवि एवं उनकी रचनाओं के संदर्भ में जानकारी दी गई है।
- इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप कबीरदास, रैदास, गुरूनानक, दादूदयाल, मलूकदास, सुन्दरदास, जम्भनाथ एवं संत सींगा जैसे प्रमुख निर्गुण कवियों एवं उनकी रचनाओं से परिचित हो पायेंगे।

.1 प्रस्तावना

2 कबीरदास

3 रैदास

4 गुरूनानक

5 मलूकदास

6 सुन्दरदास

7 जम्भनाथ

8 संत सींगा

9 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)

10 अभ्यास प्रश्न (लघुउत्तरीय प्रश्न

11 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रस्तावना

निर्गुण भक्ति निराकार के रूप में ईश्वर की भक्ति और पूजा है। यह शब्द संस्कृत से आया है। 'नीर' एक उपसर्ग है जिसका अर्थ है- 'बिना', गुना, जिसका अर्थ है 'गुण' और 'भक्ति' जिसका अर्थ है 'भक्ति या बफादारी'। कुछ विद्वान निर्गुण भक्ति को भक्ति का सर्वोच्च रूप बताते हैं। यह भक्ति है जिसमें व्यक्तिगत लाभ की कोई इच्छा नहीं होती है।भक्तिकाल में काव्य की दो प्रधान धाराएँ प्रचलित हुई- निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा। निर्गुण काव्यधारा की भी दो शाखाएँ बनी "ज्ञानाश्रयी शाखा" और "प्रेमाश्रयी शाखा ज्ञानाश्रयी शाखा को संतों नेपोषित किया। इसका नतीजा यह हुआ कि काव्य की यह धारा जन-जन में जीवन को पवित्र बनाने वाली सिद्ध हुई।डा. श्यामसुंदर दास का मत है- संत कवियों में अपनी निर्गुण भक्ति द्वारा जनता के हृदय में अपूर्व आशा उत्पन्न की, उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी। संत कवियों ने समाज में फैले हुए विभिन्न आडम्बरों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों आदि का पर्दाफाश किया और जनता के सच्चे एवं अच्छे मार्ग की ओर अग्रसर किया। निर्गुण काव्यधारा के अधिकांश कवि तथाकथित निम्न जाति में उत्पन्न हुए। समाज के निचले स्तर की गिरी जातियों में जन्म लेने के कारण इन्हें ऊँच-नीच संबंधी कटु अनुभव या इन कवियों में कबीर (जुलाहा), रैदास (चमार), सेन (नाई), दादूदयाल (धुनिया), गुरूनानक (सिख) मलूक दास, धर्मदास, सुन्दरदास आदि नाम उल्लेखनीय है। ज्ञानाश्रयी शाखा की संत काव्यधारा में रामानंद का नाम सर्वोपरि है। संत मत के प्रचार का श्रेय इन्हीं को है। इनके शिष्य कबीरदास ने ज्ञानाश्रयी शाखा को अमर बना दिया। संत कवियों की भाषा खिचड़ी या सधुक्कड़ी है। ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटक भटक कर कई प्रकार की भाषा ग्रहण करते थे। इस कारण इनका भाषा भंडार विविधता से भरा था। सधुक्कड़ी भाषा अनगढ़ और अपरिमार्जित है। कहीं-कहीं गूढ़ ज्ञान के कारण भाषा क्लिष्ट हो जाती है किन्तु यह सत्य है कि इन कवियों को भाषा पर जबरदस्त अधिकार था।

2 कबीरदास (1398-1518 ई.)

कबीरदास के उत्पत्ति के संबंध में कई प्रकार के विवाद प्रचलित हैं। नीरू और नीमा अपनी युवती प्रिया का द्विरागमन (ससुराल से जाने के बाद, वापस आना और फिर चले जाना) कराकर गृह को लौट रहे थे। तो मार्ग में उसको काशी के लहरतारा के तालाब पर एक नवजात संदर बालक पड़ा हुआ दिखाई पड़ा। नीमा और नीरू उस

नवजात को शिशु के रूप में ग्रहण किया और वह उसे घर लाया वही बालक पीछे कबीरदस के नाम से प्रचलित हुए। कबीरदास का जन्म काशी में 1398 ई. और मृत्यु मगहर में 1518 ई. में हुई। आरंभ से ही कबीर ने हिंदू भाव से भक्ति करने की प्रवृत्ति लक्षित होती थी जिसे उसे पालने वाले माता-पिता न दबा सके। वे राम-राम जपा करते थे और कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थे। एक दिन वे पहर रात रहते ही उस पंचभंगा घाट की सीढ़ियों पर जा पड़े जहाँ से रामानंद जी स्नान करने के लिए उतरा करते थे। जब रामानंद जी स्थान को जाते समय अंधेरे में रामानंद जी का पैर कबीरदास के उपर पड़ गया। रामानंद जी उसी समय बोलने लगे, राम-राम कह! कबीरदास ने इसी को गुरुमंत्र मान लिया और वे अपने को रामानंद जी का शिष्य कहते लगे। कबीर के काव्य पर इन सबका प्रभाव देखा जा सकता है। शंकराचार्य का अद्वैतवाद, नामपंथियों की अंतःसाधनात्मक रहस्यवाद, वैष्णवों का अहिंसावाद और प्रपतिवाद तथा सूफियों का भावात्मक रहस्यवाद सब कुछ मिलता है। अंतस्साधनात्मक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग उन्होंने खूब किया है। साथ ही अहिंसा की भावना और वैष्णव प्रतिवाद भी। कबीर की वाणी का संग्रह "बीजक" कहलाता है। इसके तीन भाग हैं- 1. रमैरी, 2. सबद और 3. साखी। रमैरी और सबद गेय पद में हैं। गेय से तात्पर्य गाने योग्य से है। साखी दोहों में हैं। रमैनी और सबद ब्रजभाषा में है, जो तत्कालीन मध्यदेश की काव्य भाषा थी। साखियों में पूर्वी का प्रयोग अधिक है जिसे स्थानीय या क्षेत्रीय प्रभाव मानना चाहिए। कबीर साहसपूर्वक जन बोली के शब्दों का प्रयोग अपनी कविता में करते हैं। बोली के ठेठ शब्दों के कारण ही कबीर को "वाणी का डिक्टेटर कहते हैं। कबीर निरक्षर थे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।

"मासि कागद छूपौ नही, कलम गधौं नहि हाथ!"

कबीर भक्ति के बिना सारी साधनाओं को व्यर्थ और अनर्थक मानते हैं। कबीर प्रेम और भक्ति के बल पर वे अपने युग के सारे मिथ्याचार, कर्मकांड अमानवीयता, हिंसा, पर-पीड़ा को चुनौती देते हैं-

"दिन भर रोजा रखत है. रात हनत है गाय। यह तो खून वह बंदगी, कैसे खूसी खुदाय!"

कबीर ने जीव को ब्रह्म का अंश माना है। जो माया के कारण अपने स्वरूप को भुला हुआ है। माया के नष्ट होते ही जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन होता है। इन पंक्यितों मेंद्रष्टव्य है-

"जल में कुम्भ कुम्भ में जह है बाहर भीतर पानी। फूटा कुम्भ जल-जलहि समाना यह तत कथेहु गियानी।" उनके काव्य उनके व्यक्तित्व और उनकी साधना में जो अक्खड़पन, निर्भीकता और दोटूकपन है। वह भी इसी भक्ति या महाराग के कारण वे पूर्व-साधनाओं की पारिभाषिक शब्दावली को अपनाकर भी उसमें जो नई अर्थावता भरते हैं, वह भी वस्तुतः प्रेम व्यक्ति की ही अर्थवता है।

कबीर दास जी विशाल गतिशील बिंब प्रस्तुत करते हुए आकाश और धरती को चक्की के दो पाट बताते हैं।

"चलती चाकी देखकर, दिया कबीरा रोय। दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय ।।"

कबीरदास अपने अनुभव, पर्यवेक्षण और बुद्धि को निर्णायक मानते है, शास्त्र को नहीं। इस दृष्टि से वे यथार्थ-बोध के रचनाकार हैं। उनके यहाँ जो व्यंग्य की तीव्रता और धार है। वह भी कथनी-करनी के अंतर को पाने की क्षमता के कारण। अपने देखने या अनुभव को न झुठलाने के कारण ही वे परंपरा द्वारा दिए गए समाधान को अस्वीकार करके नए प्रश्न पूछते हैं-

"चलन-चलन सब लोग कहत है, न जानों

बैकुंठ कहाँ है? या न जाने तेरा साहब कहा है।"

कबीर बहुत गहरी मानवीयता और सहृदयता के कवि हैं। अक्खड़ता और निर्भयता उनके कवच है। उनमें मानवीय करूणा, निरीहता, जगत के सौंदर्य से अभिभूत होने वाला हृदय विद्यमान है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं "इसमें कोई संदेह नहीं की कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथ पंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य-शुष्क पड़ता जा रहा था।"

3 रैदास (रविदास) (1388-1818 ई.)

रैदास कबीर-परंपरा के संत कवि कहे जाते हैं और ये भी रामनंद के शिष्य में आते हैं। इनका जन्म भी बनारस में ही हुआ था। कबीर की जन्मभूमि लहरतारा से दक्षिण 'मडुवाडीह' में। एक ही नगर और एक ही विचारधारा के होने के नाते दोनों की मिलने-जुलने की कल्पना की जा सकती है। रैदास निम्न जाति में पैदा होने के कारण उन्हें कोई गिला-शिकवा नहीं था। वे अपने को ब्राह्मण या शेख से छोटा नहीं समझते थे। रैदास का विचार है कि चमार जाति का शोषण और अपमान अनंत काल से होता रहा है। जूता बनाना, मरे जानवरों को ढोना, हलवाही करना उनका पेशा रहा है। अपने ओछे जन्म को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है-

"जाती ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा।

रामराज की सेवा कीन्ही, कही रविदास चमारा!!"

रैदास के समय का कोई निश्चित आधार नहीं है जो माना जाता है। उनका समय वह किंवदति है। धन्ना और मीराबाई ने रैदास का उल्लेख आदरपूर्वक किया है। यह भी कहा जाता है कि मीराबाई रैदास की शिष्या थी। रैदास की भक्ति का

ढाँचा निर्गुणवादियों का ही है। किंतु उनका स्वर कबीर जैस आक्रामक नहीं है। रैदास की कविता की विशेषता उनकी निरीहता है। वे अनन्यता पर बल देते हैं। रैदास ने निरीहता के साथ-साथ कुंठाहीनता का भाव द्रष्टव्य है। भक्ति-भावना ने उनमें वह बल दिया था जिसके आधार पर वे डंके की चोट पर घोषित कर सके कि उनके कुटुंबी आज भी बनारस के आसपास ढोर ढोते हैं। (मुर्दा पशु) और दासानुदास रैदास उन्हीं का वंशज है-

"जाके कुटुंब सब ढ़ोर ढोवंत फिरहि अजहुँ बानारसी आसपासा। आचार सहित विप्र करहिं डंड उति तिन तनै रविदास दासानुदासा।।

रैदास की भाषा आसान और चलती भाषा है। जिसमें गेयता का गुण है। इनका आत्मनिवेदन, दैन्य भाव और सहज भक्ति पाठक के हृदय को उद्वेलित करती है। रैदास के 40 पद सिखों के पवित्र धर्म ग्रंथ "गुरुगं रथ साहब" में भी सम्मिलित है।

इनका एक दोहा हरेक जुबाँ पर सूनी जाती हैः- "अब कैसे छूटे राम रट लागी। प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी ।। प्रभु जी, तुम धन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।। प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दीन राती ।। प्रभु जी, तुम मोती, एक धागा जैसे सोनहि मिलत सोहागा।।"

4 गुरूनानक (1469-1538 ई.)

गुरूनानक का जन्म राइभोई के तलबंडी नामक गांव में हुआ, जो लाहौर से लगभग 30 मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है। बाद में इसे नानकाना कहा जाने लगा। इतिहास ने इसे अब पाकिस्तान के हवाले कर दिया है। इनके पिता का नाम कालूचंद खत्री जिला लाहौर, तहसील शरकपुर के तिलबंडी नगर के सूबा बुलारं पठान के कारिंदा थे। इनकी माता का नाम तृप्ता था। नानक जी बाल्यावसथा से ही अत्यंत साधु स्वभाव के थे।

5 मलूकदास (1574-1682 ई.)

मलूकदास (1574-1682 ई.) का जन्म अकबर के काल में हुआ था। इनका जन्म लाला सुन्दरदास खत्री के घर में कड़ा जिला इलाहाबाद में हुआ। इनकी मृत्यु 108 वर्ष की अवस्था में हुई। ये औरंगजेब के समय में दिल के अंदर खोजने वाले निर्गुण मत के नामी संतों में हुए हैं। इनके संबंध में बहतु से चमत्कार प्रसिद्ध हैं। एक बार इन्होंने एक डूबते हुए शाही जहाज को पानी के ऊपर उठाकर बचा लिया था और तो और रूपयों का तोड़ा गंगा में तैरा कर कड़ा से इलाहाबाद भेज दिया। इनका एक पंक्ति आलसी व्यक्तियों के लिए मूत्र मंत्र साबित हुआ-

"अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका कहि गए, सबको दाता राम।।"

संसार से विरक्ति का जो बीज मलूकदास के हृदय के आगे चलकर पल्लवित हुआ, उसका बीजारोपण उसकी वाल्यावस्था में ही हो चुका था। उनके गुरू के संबंध कई प्रकार के मतभेद हैं। किन्तु मलूकदास ने अपनी रचना "सुखसागर" में गुरू देवनाथ के पुत्र पुरूषोत्तम का गुरू-रूप में स्मरण किया है। मलूकदास की कुछ प्रामाणिक रचनायें हैं- ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तवच्छावली, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोधि, बारहखड़ी, रामअवतारलीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर और स्फुट पट आदि।इनकी गछियाँ बहुत जगहों पर है। जैसे- कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नेपाल और काबुल तक में कायम है। इनकी रचनाएँ प्रायः वही बात सामने आते हैं। जो अन्य संत कवियों ने लिखी हैं। इनकी कुछ पंक्तियों का उल्लेख किया जाता है-

"अब तो अजपा जपु मन मेरे। सुर नर असुर टहलुआ जाके मुनि गंधर्व है जाकेक चेरे।।"

"नाम हमारा खाक है, हम खाकी के बंदे। खाकहि से पैदा किए अति गाफिले गंदे ।।"

"कबहुँ न करते बंदगी, दुनियाँ में भूले। आसमान को ताकते, घोड़े चढ़ फूले।।"

"सबहिन के हम सबै हमारे। जीव-जंतु मोहि लगै पियारे। तीनों लोक हमारी माया। अंत कतहूँ से कोई नहि पाया।।"

6 सुन्दरदास (1596-1689 ई.)

निर्गुण संत कवियों में सुन्दरदास जी सर्वाधिक शास्त्रीय ज्ञान संपन्न सुशिक्षित महात्मा थे। सुन्दरदास जी 6 वर्ष की उम्र में दादूदयाल जी शिक्षा ग्रहण करना प्रारंभ किया। जिस समय दादूदयाल धौसा गये थे। धौसा में ही इनका जन्म 1596 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम परमानन्द खंडेलवाल और माता का नाम सती था। दादूदयाल की मृत्यु के बाद संत जगजीवन साधु के साथ वे 10 वर्ष की आयु में काशी चले गए। वहाँ 30 वर्ष की आयु तक उनहोंने जमकर अध्ययन किया। काशी से लौटकर वे राजस्थान में शेखावटी के निकट फतहपुर नामक स्थान पर गए। ये संस्कृत के अतिरिक्त फारसी भी बहुत अच्छी जानते थे। इनका देहान्त साँगानेर में 1689 ई. में हुआ। कहा जाता है कि वे अपने नाम के अनुरूप अत्यंत सुन्दर है। ये श्रंगार रस के घोर विरोधी कवि थे। वे लिखते हैं-

• रसिक प्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जानि।

चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि ।।"

सुशिक्षित होने के कारण उनकी कविता कलात्मकता से युक्त और उनकी भाषा परिमार्जित है। आचार्य रामचंद्र

शुकल जी का विचार है- निर्गुणपंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्यकला की रीति आदि में अच्छी तरह परिचित थे। अतः इनकी रचना साहित्यिक और सरस है।" निर्गुण संतों ने गेय पद और दोहे ही लिखे हैं। सुन्दरदास ने कवित और सवैये भी रचे है। इनकी कात्रू भाषा में अलंकारों का प्रयोग भी खूब हुआ है। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ "सुंदर विलास" है।

संत तो ये थे ही साथ में अच्छे कवि भी थे। इन्होंने समाज की रीति-रिवाजों पर बड़ी ही व्यंग्य उक्तियाँ

कही है। जैसे -

गुजरात पर- "अयाड़छीत अतीत सो होत बिलार और कूकर चाहत हाँड़ी।"

मारवाड़ पर- "वृच्छ न नीरन उत्तम चीर सुदेसन मे गत देश है 'मारू'।"

दक्षिण पर "राँधत प्याज, बिगारत नाज, न आवत लाज, करे सब भच्छन।"

पूरब देश पर- "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैसरू सूदर चारोई बई के मच्छ बधारत।"

जब कभी वेदांत का तत्त्वज्ञान छोड़कर ये अन्य विषयों पर लिखते थे, तब निस्संदेह रचना उत्तम कोटी की होती है। व्यर्थ की भद्दी या साधारण कविता जिसमें काव्य के गुण न हों और उटपटाँग बानी इनको पसंद नहीं थी इस बात का पता इस पंक्ति से लगाया जा सकता है-

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की बुद्धि दोम,

ना तो मुख मौन गहि चुप होय रहिए।

जोरिए तो तब जब जोरिबै को रीति जानै,

तुम छंद अरथ अनूप जामे लहिए।

गाइए तौ तब जब गाइबे को कंठ होय,

श्रवन के सुनतहीं मनै जाय गहिए।

तुकभंग, छंदभग, अरथ मिलै न कछु,

सुंदर कहत ऐसी वाणी नहि कहिए ।।

निर्गुण साधना और भक्ति के अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक व्यवहार लोकनीति और भिन्न-भिन्न जगहों के रहन-सहन पर भी उन्होंने उक्तियाँ कही है। लोकधर्म और लोकमर्यादा की उन्होंने उपेक्षा नहीं की है।

इस प्रकार निर्गुण संत कवियों ने अपने कविता के माध्यम से समाज में हो रहे कुरीतियों और पाखंड पर करारा प्रहार किया है। इनकी कविता लोक जवीन के लिए अधिक सुसाध्य और हृदयग्राही सिद्ध हुए। सभी संत कवियों ने अपने जीवन के अनुभव को समझा और घूम-घूम कर उसका प्रचार किया जिससे की लोगों के जीवन में एक नया जागरण उत्पन्न हुआ। संत कवियों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है और आने वाले कल में भी इसी प्रकार बनी रहेंगी।

7 जम्भनाथः (1451-1523 ई.)

सन्त जम्भनाथ का जन्म 1451 ई. में जोधपुर राज्य के नागौर के पीपासर ग्राम में हुआ था। जो वर्तमान में राजस्थान राज्य में स्थित है। एक प्रचलित धारणा के अनुसार चैंतीस वर्ष की अवस्था तक इन्होंने एक भी शब्द उच्चरित नहीं किया और चमत्कारित कृत्यों के प्रदर्शन के कारण जनता ने इन्हें जम्भ जी कहना प्रारम्भ किया। सिद्धि प्राप्त हो जाने के अनन्तर ये मुनीन्द्र जम्भ ऋषि के नाम से विख्यात हुए। काव्य-रचना में इनकी अच्छी गति थी, परन्तु दुर्भाग्य से अभी तक इनकी कोई कृति नहीं मिली है। कतिपय संग्रहों में इनकी स्फुट रचनाएँ संकलित हैं। अभिव्यंजना-शैली के परिचयार्थ इनके दो दोहे द्रष्टव्य हैं।

गगन हमारा बाजा बाजे, मतर फल हाथी।

संसै का बल गुरुमुख तोड़ा, पांच पुरुष मेरे साथी ।।

जुगति हमारी छात्र सिंधासन, महासक्ति में बांसे।

जंभनाथ वह पुरुष विलच्छन जिन मंदिर रचा अकासे।।

जम्भनाथ ने अपने आदर्शों या मत के प्रचारार्थ 'विश्वई सम्प्रदाय' की स्थापना की। अपने जीवन में इन्होंने चार प्रमुख शिष्यों को मान्यता प्रदान की, जिनके नाम हैं- हावली पावजी, लोहा पागल, दत्तनाथ तथा मालदेव। नाम से ये शिष्य नाथपन्थी प्रतीत होते हैं। सम्भव है, विश्नुई सम्प्रदाय किसी अंश तथा नाथ-पन्थ के आदर्शों से प्रभावित रहा है। जम्भनाथ की उपलब्ध रचनाओं में भी अधिकतर देहभेद और योगाभ्यास जैसे विषय ही मिलते हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि ये नाथ पन्थ के विशेष प्रभावित थे। इनकी रचनाओं में ओंकार-जप, निरंजन की उपासना,

अजपा जप, गगनमण्डल, पंचपुरुष, सतगुरु-महिमा, सोऽहं-जप, जरा-मरण से मुक्ति, अनन्य भक्ति आदि का बारम्बार उल्लेख हुआ है। आजपा जप और निरंजन की उपासना का इन्होंने विशेष रूप से उपदेश दिया है। प्रसिद्ध है कि जम्भनाथ की मृत्यु 1523 ई. में समाधि लेकर हुई थी। जबकि अन्य मत के अनुसार इस घटना को 1536 ई. में तालासर गाँव के निकट होना बतलाते है। इनका समाधि-स्थल सम्भराथल नाम से विख्यात है।

8 संत सींगा (1519-1659)

संत सींगा का जन्म मध्यभारत की रियासत बडवानी के खजूर गांव में एक ग्वाल-परिवार में हुआ। बाल्यावस्था से ही वे संसार से विरक्त रहा करते थे। एक बार वे हरसूद के मामगढ़-मार्ग पर जा रहे थे, मार्ग में महाराज ब्रह्मगीर के शिष्य मनरंगीर यह भजन गा रहे थेः

समुझि ले औरे मना भाई, अंत न होय कोई अपणा।

यही माया के फंदे में, तर आन भुलाणा।।

इन पंक्तियों ने संसार की निःसारता को उनके हृदय में प्रत्यक्ष रूप से अंकित कर दिया और उन्होंने मनरंगीर को अपना आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक स्वीकार कर लिया। पिपल्या के जंगलों में उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की साधना की और अनहद नाद सम्बन्धी भजन लिखे। वे उच्च कोटि के विचारक थे। उनके अनुसार परम तत्त्व की खोज में मंन्दिर, मस्जिद और तीर्थों में जाने की आवश्यकता नहीं है, उसके दर्शन गंगा, यमुना आदि में स्नान करने से नहीं होते, वरन् वह तो हृदय में ही विद्यमान हैं। यथाः

जल विच कमल, कमल विच कलियां, जहं वासुदेव अविनाशी।

घर में गंगा, घर में जमुना, नहीं द्वारिका कासी ।।

घर वस्तु बाहर क्यों ढूंढे, बन बनर फिरा उदासी।

कहैं जन सिंगा, सुनो भाई साधो, अमरपुर के वासी ।।

सींगा की निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी धारणा सन्त कबीर की ब्रह्म विषयक कल्पना से बहुत कुछ साम्य रखती है। उनकी उक्तियों में अप्रस्तुत-योजना बड़ी यथार्थ और स्वाभाविक है। उनके द्वारा विरचित पदों की संख्या 800 बतायी गयी है, किन्तु वे सभी अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। उनकी काव्य-भाषा निमाड़ी है। कहा जाता है कि उन्होंने ग्यारह रचनाओं का निर्माण किया था, जिनके नाम क्रमशः ये हैं- 'सिंगा जी का दृढ़ उपदेश', 'सिंगा जी का आत्मध्यान', सिंगा जी का दोष-बोध', 'सिंगा जी का नरद', 'सिंगा जी का शरद', सिंगा जी की वाणी', 'सिंगा जी की

वाणावली', 'सिंगा जी का सातवार', 'सिंगा जी की पन्द्रह तिथि', 'सिंगा जी की बारहमासी' तथा 'सिंगा जी के भजन'। इनमें से अन्तिम के अन्तर्गत उनके समाधि-भजन एवं निर्गुण मार्ग के भजन आते हैं, जिन्हें आज भी गाया जाता है। सम्प्रति उनके काव्य का एक छोटा-सा संग्रह 'सन्त सिंगा जी' शीर्षक से उपलब्ध है।

9 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)--

निर्गुणकाव्यधारा,ज्ञानाश्रयीशाखा,प्रेमाश्रयीशाखा,कबीरदास,रैदास,गुरूनानक,मलूकदास, सुन्दरदास, जम्भनाथ

10 अभ्यास-प्रश्न (लघुउत्तरीय प्रश्न)

1. निर्गुण काव्यधारा पर एक टिप्पणी लिखें।

2. कबीर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. निर्गुण से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।

4. कबीर के अतिरिक्त अन्य निर्गुण कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

5. दादूदयाल की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

11 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. निर्गुण कवि एवं उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालें।

2. कबीर एक निर्गुण कवि थे? विस्तार पूर्वक लिखें।

3. निराकार ब्रह्म के उपासक कवियों का परिचय दें।

4. निर्गुण काव्यधारा के बीज पुरूष रामानंद के कार्यों का उल्लेख करें।

5. निर्गुण और सगुण काव्यधारा में अन्तर स्पष्ट करते हुए कबीर के संदर्भ में लिखें।

13 संदर्भ ग्रंथ सूची

* हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल

* हिन्दी साहित्य इतिहास भूमिका हजारी प्रसाद द्विवेदी

* हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) डॉ नगेन्द्र

* हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (1965) गणपति चंद्र गुप्त

BLOCK 5

निर्गुण काव्य की आवश्यकताएँ

UNIT-5

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य-

- इस इकाई के अन्तर्गत आप निर्गुण काव्य धारा की ज्ञानमार्गी (संत) शाखा का अध्ययन करेंगे।
- इस इकाई को पढ़ने को बाद आप :
- संत काव्य की पृष्ठभूमि की चर्चा कर सकेंगे;
- संतमत के सिद्धान्त का परिचय प्राप्त कर उसके स्वरूप को समझा सकेंगे;
- संत काव्य की विशेषताओं का परिचय दे सकेंगे

1. प्रस्तावना
2. संत मत का आविर्भाव
3. काव्य-रचना मुख्य उद्देश्य नहीं
4. निर्गुण काव्य की आवश्यकताएँ
5. कीवर्ड्स (संकेत शब्द)
6. अभ्यास प्रश्न (लघुउत्तरीय प्रश्न
7. दीर्घउत्तरीय प्रश्न
8. संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रस्तावना

यह इकाई निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा से संबंधित है। हिन्दी साहित्य के सन्त कवियों की ज्ञानाधारित निष्पक्षता, न्यायप्रियता, भक्तिभावना और काव्यधारा को दृष्टिगत कर इसे ज्ञानमार्गी काव्यधारा की संज्ञा दी जाती है। इस काव्यधारा के लिए 'संत काव्यधारा' और 'निर्गुण काव्यधारा' नाम भी दिए गए हैं। भक्तिकाल की विषम राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में आशा की ज्योति बिखेरने का कार्य संत काव्यधारा के कवियों ने किया। उन्होंने तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं को अपने जीवन के व्यापक अनुभव के आधार पर जनसामान्य के लिए

बोधगम्य बनाया। देखा जाए तो ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के उद्‌भव में युगीन परिवेश की सबल भूमिका रही है। इन कवियों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को समाज के अभिन्न अंग के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए उनमें भावात्मक एकता लाने का प्रयास किया। इन्होंने विभिन्न विवादों को छोड़कर निर्गुण के आधार पर राम और रहीम को एकाकार करने का अनूठा कार्य किया। धार्मिक सहिष्णुता को संत कवियों ने सामाजिक विकास के लिए आवश्यक माना। उनके साहित्य में आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी सक्रिय थी। संत काव्य का अध्ययन करते हुए आप पाएंगे कि उनके काव्य में सामाजिक मूल्यों के प्रति गहरी चिन्ता मिलती है। सामंती समाज के वर्णवादी मूल्यों के प्रति उनमें आक्रोश है। वर्णवाद सामाजिक विषमता को पैदा करता है। इस सामाजिक विषमता के विरुद्‌ध संत कवि खड़े होते हैं। संत कवि वर्णवादी समाज को तोड़कर मानवतावादी समाज की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। निर्गुण काव्य में मानवीय अनुभव और विवेक को प्रामाणिक माना गया है। इसलिए संत कवि पांडित्य परंपरा और पुस्तकीय ज्ञान के वाद-विवाद को व्यर्थ मानते हैं। उनके काव्य में अनुभूति की निश्छलता और शिल्प की अनगढ़ता मिलती है। उन्होंने साहित्य में लौकिक अनुभूतियों को स्थान दिया।

2संत मत का आविर्भाव

हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। देश की विचित्र परिस्थितियों ने इस मत को जन्म दिया और संत मत के सामान्य भक्ति मार्ग में विविध वादों का समन्वय हुआ। इसमें हिन्दू-मुस्लिम, गोरख पंथी, वेदान्ती, सूफियों एवं वैष्णवों के धार्मिक सिद्‌धान्तों का भी समन्वय हुआ। संक्षेप में इस मत के कवियों की सामान्य विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता हैं--

3काव्य-रचना मुख्य उद्‌देश्य नहीं

संत कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था। उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उद्‌ बोधन की भावना सन्निहित हैं। भावों के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों की योजना अवश्य की है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि काव्योत्कर्ष अथवा काव्य सौष्ठव उनका साध्य नही था, उनकी भाषा का रूप भी स्थिर नहीं है।

4निर्गुण काव्य की आवश्यकताएँ

कविता को ये संत अपनी अनुभूत सत्यों का मर्म दूसरों के समक्ष अभिव्यक्त करने का एक उत्तम माध्यम समझते थे।

- **तत्व चिन्तन का स्वरूप** संत कवि मूलतः दार्शनिक थे फिर भी उनकी भक्ति रस से सिक्त बनियों में दार्शनिक तत्वों के निरूपण का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रयत्न अवश्य दृष्टिगोचर होता हैं। डाॅ. बड़थ्वाल के मत से संत कवियों का परम तत्व एकेश्वरवादी विचारधारा से पुष्ट अद्‌वैतवाद के अधिक निकट है। संतों का

ब्रह्या त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत, विलक्षण, अलख, अगोचर, सगुण, निर्गुण से परे, प्रेम पारावार और दार्शनिकवादों तथा तर्कों के ऊपर है। वह अनुभूतिगम्य और सहज प्रेम से प्राप्य हैं।

- **साधन मार्ग** संतों की साधना का भवन ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति इन चारों स्तम्भों के सहज संतुलन पर टिका हुआ है। जिस प्रकार संत लोग अन्य विचारों में प्रगतिशील है वैसे ही साधना मार्ग के निर्धारण में भी पर्याप्त सजग है। निर्गुण संत ज्ञानत्मिका भक्ति के उपासक है। कोरा ज्ञान उन्हें अहंकार मूलक प्रतीत हुआ है। पोथी ज्ञान के भी वे विरोधी है। पोथी ज्ञान के भार से लदा हुआ आदमी उस गधे के समान है जो चन्दन का भार ढोकर भी उसकी सुगंध का सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान और अप्रत्यक्ष इन तीनों प्रमाणों में से ये संत केवल प्रत्यक्ष या अनुभूति जन्य ज्ञान को ही प्रमाणिक मानने के पक्ष में हैं। कबीर ने कहा भी है 'तू कहता कागज की लेखी मैं कहता आखिन की देखी।'

- **भक्ति मार्ग** सत्य भाषण और सत्याचरण को संत कवि भक्ति का सर्वप्रमुख तत्व मानते हैं। इसी को वे अपने शब्दों में कथनी की समरसता की संज्ञा देते हैं। नाम जप या 'नाम स्मरण' संतों की भक्ति का मूल आधार है। भक्ति के प्रेरक तत्वों में श्रद्धा, सत्संग, उपदेश, गुरू, जीवन तथा जगत की क्षण भंगुरता के ज्ञान से उत्पन्न वैराग्य भावना आदि का स्थान महत्वपूर्ण हैं। संत कवियों ने इन सबकी आवश्यकता और महत्ता का विवेचन विस्तार से किया हैं। आश्रय में निहित प्रेम या भक्ति को अभिव्यक्त करने वाले तत्वों में दैन्य, आत्म-निवेदन मय आसक्ति आदि मुख्य हैं।

- **सूफीमत का प्रभाव** संत मत पर सूफी प्रेम साधना का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता हैं। कबीर ने लिखा हैं--

  प्रेम बिना धीरज नहीं, विरह बिना वैराग।

  सतगुरू बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग।

  जोगी जनम से बड़ा, सन्यासी दरवेस।

  बिना प्रेम पहुंचे नहीं, दुरलभ सतगुरू देस।

- **रहस्यवाद की प्रवृत्ति** संत कवियों ने शंकाराचार्य के अद्वैत मत को लेकर अपनी रहस्यवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है किन्तु इनका रहस्यवाद माधुर्य भाव से वेष्टित हैं। इन संत कवियों के विरह में लौकिक दाम्पत्य भाव के सहारे आत्मा का शाश्वत क्रन्दन व्यक्त किया गया है और यह मिलन सहज नहीं हैं।

- **रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध** प्रायः सभी संत कवियों ने रूढ़ियों, मिथ्याडम्बरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इन्होंने मूर्ति पूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हज्ज आदि विधि विधानों, बाह्याआडम्बरों, जाति-पांति भेद आदि का हटकर विरोध किया हैं।

- **नारी के प्रति दृष्टिकोण** संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके विश्वासानुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियां है। कबीर का कहना हैं कि--

"नारी की झाई पतर, अन्धा होत भुजंग।
कबीरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।।"
जहां इन्होंने नारी की इतनी निन्दा की है वहीं दूसरी और सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी की है। कबीर ने कहा हैं--

"पतिव्रता कैसी भली, काली कुचित वुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, बारो कोटि सरूप।।"

- **लोक संग्रह की भावना** इस वर्ग के सभी कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे। नाथ पंथियों की भांति योगी नहीं थे। संतों ने आत्म शुद्धि पर बहुत बल दिया है। जहाँ एक और संत लोग कवि और भक्ति आंदोलन के उन्नायक है, वहां समाज सुधारक भी। संत काव्य में उस समय का समाज प्रतिबिम्बित हैं।

5.कीवर्ड्स (संकेत शब्द)- भावात्मक एकता, निर्गुण, राम,रहीम, धार्मिक सहिष्णुता, संत कवि, सामाजिक विकास, आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक चेतना, निर्गुणकाव्यधारा

6. <u>अभ्यास प्रश्न (लघुउत्तरीय प्रश्न</u>

1. निर्गुण काव्य क्या है**?** इसे परिभाषित कीजिए।
2. निर्गुण काव्य के प्रमुख कवि कौन-कौन से हैं**?**
3. निर्गुण काव्य में ईश्वर की कैसी अवधारणा प्रस्तुत की गई है**?**
4. निर्गुण काव्य की भाषा की विशेषताएँ क्या हैं**?**
5. निर्गुण काव्य और सगुण काव्य में क्या अंतर है**?**
6. निर्गुण काव्य में गुरु का क्या महत्व है**?**

7.दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. समाज सुधार के दृष्टिकोण से निर्गुण काव्य का क्या महत्व है**?**
2. निर्गुण काव्य में प्रेम और करुणा की भावना को कैसे प्रस्तुत किया गया है**?**
3. निर्गुण काव्य में साधना और ज्ञान का महत्व किस प्रकार से स्पष्ट किया गया है**?**
4. निर्गुण काव्य के उदाहरण स्वरूप कुछ प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।
5. निर्गुण काव्य में प्राकृतिक चित्रण का क्या महत्व है**?**
6. निर्गुण काव्य का साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान क्या है**?**
7. निर्गुण काव्य में साधारण जनजीवन का चित्रण कैसे किया गया है**?**
8. निर्गुण काव्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं**?**

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची</u>

* कबीर ग्रंथावली, श्याम सुन्दर दास, बी.ए., नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

*. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

* . कबीर, सम्पादक विजयेन्द्र स्नातक, राधाकृष्ण प्रकाशन, बिल्ली, सं. 1965